१ (२२)[1]

अपणे रचि रचि भवनिर्वाणा[2]।
मिथ्यें लोअ बन्धावए अपणा॥
अम्हे[3] ए आणहुँ अचिन्तजोइ।
जाम मरण भव कइसण होइ॥
जइसो[4] जाअ मरणहि तइसो।
जीवन्ते मइलें[5] णाहि विशेसो॥
जा एथु जाअ मरणे विसङ्का[6]।
सो करउ रस रसायनें कङ्खा॥
जे सचराचर तिअस भमन्ति।
ते अजरामर किम्पि न होन्ति॥
जामे काम कि कामे जाम।
सरह भणति अचिन्त सो धाम॥

× × ×

अपणे रचि रचि भव निर्वाणा।
मिथ्यें लोक बन्धावए अपना॥
हम न जानी अचिन्त्य योगि (गी)।
जन्म मरण भव कइसन होइ॥
जइसे जन्म मरणे तइसे।
जीते मुइते नाहि विशेषे॥
जे एत जन्ममरणे विसङ्का।
ते करओ रस रसायन (क) कांक्षा॥

१। दोहाकोष संख्या, सरहपादमें, चर्यागीतों, च० वि० पोथीके दशदूनोहक संख्या चिह्न।
२। सेन—विपाणा ३। सेन—अम्हे ४। सेन—जइसा
५। चर्यागीतों। शास्त्री, सेन—मइलें ६। सेन—वि अङ्का

जे नश्वरानर त्रिदश (सुर) अगणि।
से अजरामर किमपि (किछु) न होथि॥
जन्में कर्म की कर्में जन्म।
सरह भणथि अचिन्त्य से धर्म॥

जगतक बन्धन आ' मोक्ष एहि दून विकल्पकें रचि रचि, कपोल-कल्पित फल, व्यर्थें लोक अपनाकें बन्हैत अछि। हम तें अचिन्त्ययोगसिद्ध भए गेलहुँ (परमात्मलीन भए गेलहुँ), आब तें बुद्धत्वहिमे नहि अद्वैत अछि जन्म-मरण लक्षित जगतक स्वरूप केहन छैक। हमरा हेतु तें जेहने जन्म तेहने मरण, कारण जीवन्मुक्त छी (जीवित रहितहुँ मोक्ष प्राप्त कएने छी)। आब जीवन की? आ' मृत्युए की? दूनूमे कोनो विशेष नहि प्रतीत होइत अछि। जकरा जन्म-मरणक विकल्प रहैत छैक से रस (-सिद्धिक पश्चात् परमानन्द) तथा रसायनादि द्वारा योगसाधनाक इच्छा करैत अछि। आ' धरि आत्मा चराचरलोकने, मृत्युभुवन आ स्वर्गमे, भ्रमण करैत रहैत अछि ता' धरि ओ अजर अमर (मुक्त) नहि मानल जाएत (स्वर्गहुसँ तें पुण्यक्षय भेला पर पतन देखले गेल अछि)। मुक्ति ओएह थिक जकर पश्चात् आत्मा नित्य अविनाशी आनन्दमे लीन भए जाइत अछि। सरह कहैत छथि, हमरा एहि विवादमे नहि जेबाक अछि, हम इएह जनैत छी जे वस्तुतः एके टा धाम (पवित्र लक्ष्य) अछि, ओ थिक अनुत्तरत्वलाभ, शिवत्वलाभ, जे अचिन्त्य थिक, अवाङ्मनसगोचर थिक।

२ (३२)

नाद न बिन्दु न रवि शशि मण्डल[1]।
चित्तराअ सहावे मुकल॥
उजु रे उजु[2] छाडि मा लेहु रे बङ्क।
निअडि[3] बोहि मा जाहु रे लाङ्क॥
हाथे रे[4] काङ्कण मा लेउ दापण।
अपणे अपा बुझ तु निअमण॥
पार उआरें सोइ मज्झिह[5]।

१। चर्यागी। शास्त्री, सेन—न शशि (शशि) मण्डल
२। सेन—दुदु रे उजु ३। चर्यागी। शास्त्री—निअडि। सेन—निअडिह
४। सेन। शास्त्री—हाथेरे ५। चर्यागी। शास्त्री, सेन—मज्झिह

दुजण लाहें अवसरि जाइ॥
वाम दाहिण जो खाल विखला।
सरह भणइ बापा[6] उजुवाट भाइला॥

× × ×

नाद न बिन्दु न रवि-शशिमण्डल।
चित्तराज स्वभावें मुकल (मुक्त)॥
सोअ रे! सोअ छाडि न लएह बङ्क (!)।
निअर बोधि न जाहु रे! लङ्क (!)॥
हाथे रे! कङ्कण न लएह दर्पण।
अपणे आत्मा बुझह तों निअ मन॥
पार उआरें से डूबए (मज्जति)।
दुर्जन लङ्ग (जे) अपसरि जाए॥
वाम-दहिन जे खड़ा-खुड़ी (छल)।
सरह भणइ बाप! सोअ बाट भेल॥

चित्तक शोधनक हेतु नाद, बिन्दु, रवि-शशिमण्डल कमूक साधनक प्रयोजन नहि। चित्तराज स्वभावतः मुक्त छथि, हुनका सोअहि बाटपर जाए दहुन, हेर बाटपर नहि। निकटहिमे बोधि, परम प्रकाश-विमर्श-बोध प्राप्त होएतह, तखन चित्तकें दूर देश लङ्का दिशि नहि लए जाह। शरीरहिमे समस्त ब्रह्माण्ड तथा सभक सार तत्त्व शिवशक्ति छथि तखन ओहि परम सत्ताकें देहमे नहि ताकि अनतह की तकैत छह? हाथमे कंगना तखन अपनाक काने की? अपनहि आत्मासँ अपन मनकें चिन्हह, आत्म-बोध भेला पर अपन मनकें चिन्हिए जएबह। जे दुर्जन (अन्य सम्प्रदायक पोषक आचार्य) क सङ्गमे पड़ि जाइत छथि आ' एहि सहजमार्गसँ अपसृत भए जाइत छथि से जगतक पार-वारीमे डूबि जाइत छथि, जन्ममरणक चक्रमे नष्ट भए जाइत छथि। सरह कहैत छथि, वाम-दक्षिण मार्गमे जे खड़ा-खुड़ी छल से सभ एहि बाटमे नहि रहल। हे बाट, कौलमार्ग, सोअ बाट भए गेल।

६। सेन—बपा।

३ (३८)

काअ णावड़ि[1] खाविट मण केहु आल ।
सद्गुरुवअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाइ[2] ।
आन[3] उपाये पार ण जाइ ॥
नौ वाही[4] नौका दाण्ड गुणे[5] ।
मेलि मेलि[6] सहजे जाअ ण आणें ॥
वाटत भअ[7] खाअट वि[8] वलआ ।
भव उल्लोलें विषअ तोलिआ[9] ॥
कुल लइ खर सोतें[10] उजाअ ।
सरह भणइ गअणें समाअ[11] ॥

× × ×

काय नावक छुट्टी मन कण्डारि ।
सद्गुरुवअणे धर पतवार ॥
चित्त थिर करि धरहु रे नाव [ह] ।
आन उपाये पार न जाह ॥
नाव - वाही नौका दाण्ड गुणें ।
मेलि मेलि सहजें जाह न आणें ॥
वाटे भअ खड्गो वली ।
भव - उल्लोलें विषय तोड़ी [तोड़ि] ।
कुल लइ खर सोतें उजाह[12] ।
सरह भणि [तों] गगणे समाह ॥

१ । क्षेत्र-णावड़ि २ । क्षेत्र—वाही । तु० मैथिली 'नाह' (निम्नवर्गक शब्द)
३ । चर्यागीति । शास्त्री, क्षेत्र—अन
४ । क्षेत्र—नौवाही ५ । क्षेत्र—दाण्ड अणुगे ६ । चर्यागीति । शास्त्री, क्षेत्र—मेलि मेल
७ । चर्यागीति । शास्त्री, क्षेत्र—वाट अभअ
८ । चर्यागीति । शास्त्री—खाएअवि । क्षेत्र—खाएअ वि
९ । क्षेत्र—वि वालिआ १० । क्षेत्र । शास्त्री—सोन्ते ११ । क्षेत्र—गगणें
१२ । मैं० 'उजहिआ' शब्द उपलब्ध

काय कें नौका बनाए आ' तकर छुट्टी (अनाहतचक्र) मे चान्हल मनकें कण्डारि बनाए सद्गुरुवचनकें पतवार (कर्णधार द्र० धागची) भानि पकड़ह । चित्तकें स्थिर कए एहि नावकें, शरीरनौकाकें, पकड़ि आगाँ बढ़ह । आन उपायसँ भवसागर पार नहि कए सकबह । बाह्य जगतमे नौका-वाहक अन्य गुण (वा रस्सी) सँ नाव खेबैत अछि, एहि मार्गमे ओहिसम गुणक प्रयोजन नहि, सहजसरूप शिवशक्तिक अन्तरङ्ग बनि आगाँ बढ़ह, आन रीतिएँ नहि बढ़ह । बाटमे भयास्पद तत्त्व वा घटना भेटतह, प्रतीत होएतह जे खड्ग धारण करने दानवीय जीव तोरा पथच्युत करबाक हेतु कामादिरूपमे लागल छह, आ' भव-उल्लोलक प्रसङ्गमे अनुभूत विषय-वासनाकें तोड़ि, कुलाश्रित भए, शक्तिक आश्रित भए (कौलमार्गें), भवसागरक प्रखर स्रोतमे आगाँ बढ़ह पार करह । सरह कहैत छथुन्ह—तों शून्यगगनमे अन्तर्लीन भए जाह, महाशक्तिक अभिन्न बनि जाह ।

४ (३९)

सुइणा ह अविदार अरे निअमन तोहोर दोसे[1] ।
गुरुवअणविहारें रे थाकिअ तइ कुण्ड कइसे ॥
अकट हुँ भव इ गअणा[2] ।
वङ्गें आया मिलेसि परे भागेल तोहोर विसाणा ॥
अइभुअ भवमोह रे दिसइ पर अप्पणा ।
ए अग जलबिम्बाकारे सहजें सुण अपणा ॥
अमिआ अच्छन्तें विस मिलेसि रे चिअ परस अपा ।
परें-परें[3] जा[4] बुझिअले मारि[5] खाइअ मइ दुठ कुरुवाँ ॥
सरह भणन्ति पर सुण तोहाली कि मो दुठ[6] बलन्दें ।
एकेले अग नाशिअ रे विहरहु सुच्छन्दे[7] ॥

× × ×

सपना हे ! अविद्याक अरे । निज मन दोषें ।
गुरुवचनविहारे रहबह तों घूमि कइसें ॥

१ । सुइणें द्रान्तुम विहारअ रे निअ मन तोहोरें दोसे—चर्यागीति
२ । क्षेत्र—हुँ-भव गअणा ३ । चर्यागीति । शास्त्री—परें परेक । क्षेत्र—पारें पारें ४ ।
४ । चर्यागीति । शास्त्री—रें । क्षेत्र—म रें ५ । क्षेत्र—दुठ्ठ
६ । चर्यागीति । शास्त्री—विहरहुँ सुच्छन्दे । क्षेत्र—विरहु ईछन्दें

अकट[४] हुँ-भव ई गगना ।
बङ्गे जाया लेलह, परे भागल तोहर बिहाना ॥
लइमूल भवमोह रे ! देखाइ पर अपना ।
ए। जग जलबिम्बाकारें सहजें सून अपना ॥
अभिन्न अद्वैतें विष गिहति रे । चित परस आत्मा ।
पर-पर की बुझलह रे । मारि खाएब हम दुष्ट कुण्डला ॥
सरह भणथि वर सून गोशाला, कि मोर दुष्ट बलदें (बइदें) ।
अकेले जग नाशक रे । विहरह स्वच्छन्दे ॥

हे ! अरे ! तोहरा अपन मन अविद्या-दोषें यथार्थ प्रतीत होइत छह, किन्तु वस्तुतः ओहि प्रतीतिकें अयाथार्थ स्वप्न सदृश मात्र बुझह अथवा [डा० बागची-संस्करणक अनुसार] शून्यरूप हाथसँ तोँ अपन मनकें विदारण करह, दोष दूर करह । गुरुवचन-विहारमे तोँ कोना घूमि सकबह ? अखन तोहर मन एतेक दोषग्रस्त छह तखन ओ विहार कोना कए सकबह ? ई हुँचीजोद्भव गगन अखण्डनीय अछि अथवा ओ गगनहृदया हुँ-बीजोद्भवा महामाया अखण्डा छथि । देखह, तोँ जहाँ वज्र-जायाकें, शून्यस्वरूपिणीकें, जायाभावें स्वीकार कएलह कि परछाएँ तोहर मोहादिविज्ञान दूर भए गेलह । एहि संसारक मोह अद्भुत, पर-अपन एहन भेद प्रतीत होइत रहैत अछि । किन्तु तत्त्वदर्शीकें ई जगत् जलमे प्रतिबिम्ब जकाँ, चिद्घनक प्रतिबिम्ब जकाँ, महती शक्तिक आभास मात्र जकाँ, प्रतीत होइत अछि । एवं ओ अपनाकें सहज-साधना द्वारा शून्य आत्माक रूपमे देखैत छथि । हे चित्त ! अमृत (अमरत्वक साधन शक्ति-साधना आ' तकर परिणाम खामरस्य)क अद्वैते (ओकर सुविधा रहितहुँ) तोँ विष (-सदृश विषय) गिहैत छह, रे आत्मन् ! तोँ पररस (इतर पदार्थक रस)मे डुबाए मोहादिकें अभिन्न बनबैत छह । तोँ पर-पर एहन भावना की रखैत छह ? आब हम महामुद्राक आलिङ्गन कए सब विषयवासनाक मूल जड़ाहिकें मारि चिबा जाएब (कुचिन्ताहिक विनाश कए देब) । सरह कहथि—की हमर पवित्र गोशाला (इन्द्रियशाला), शून्यक अधिष्ठान कामपीठ, बलद (बइद या मलिन चित्त, [illegible] चित्त)सँ दुष्ट बनि गेल ? नहि । हम एकसरे विश्व (क चमत्कार)कें [illegible] । हे चित्तराय चित्त ! स्वच्छन्द भए विहार करह ।

४ । सि० आ० बो०—दु० ।

शबरपाद

१ (२८)

ऊँचा ऊँचा पावत तहिँ बसइ सबरी बाली ।
मोरङ्गिपीच्छ परहिण सबरी गिवत गुञ्जरी माली ॥
उमत सबरी पागल सबरी मा कर गुली गुहाडा तोहोरि[१] ।
णिअ घरिणी नामे सहजसुन्दरी ॥
णाना तरुवर मौलिल रे गअणत लागेली डाली ।
एकेली सबरी ए वण हिण्डइ कर्णकुण्डलवजधारी ॥
तिअ धाउ खाट पाडिआ[२] सबरो महासुहे सेजि छाइली ।
सबरो भुजङ्ग नैरामणि[३] दारी पेन्ह राति पोहाइली ॥
हिअ तांबोला महासुहे कापुर खाइ ।
सुन नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाइ ॥
गुरुवाक् पुञ्जला[४] विन्ध णिअमण बाणें ।
एके शरसन्धानें विन्धइ विन्धइ परमणिबाणें ॥
उमत सबरो गरुआ रोषें[५] ।
णिअरलिहरसन्धि पइसन्ते सबरो लोडिअ कइसे ॥

× × ×

ऊँच ऊँच पर्वत तहिँ बसइ सबरी बाला ।
मोर-अङ्ग-पुच्छ परिहन सबरी शीषमे गुञ्जामाला ॥
उन्मत्त सबर । पागल सबर । न कर गुली[६] गोहारि, तोहार ।
निज घरना नामें सहजसुन्दरी ॥
णाना तरुवर मौलल रे । गगनहि लागल डारि ।
अकेली सबरी ऐ वन हूलइ कर्णकुण्डलवज्र धारि ॥
विषाणु खाट पडल सबर महासुखें सेज ओछाओल ।
सबर भुजङ्ग नैरात्मा दारिका प्रेमें राति पोहाओल ॥

१ । चर्यागीते । शास्त्री, सेन—गोहोरि
२ । सेन—पडिला ३ । सेन—णइरामणि
४ । चर्यागीती (वा०टि०) । शास्त्री, सेन—गुरुवाक पुञ्जला ५ । सेन—गरु आअ रोषे
६ । बुद्धमे लीन, शास्त्री, आगमादि विकल्प

हिय-लाम्बूआ महासुखें कडू र लाइ ।
सूत नैरात्मा कण्ठे लए महासुखें राति पोहाइ ॥
गुरुवाक्-पुष्पें वेध निज मन बाणें ।
एके सरसन्धाने वेधइ वेधइ परमनिर्वाणे ॥
उन्मत्त शबर एवम रोषें ।
गिरिवर शिखर-सन्धि पैसैते शबर लडव कइसें ॥

ऊँच सुमेरुशिखरपर चिन्मयी ज्ञानमुद्रा वसैत छथि, हुनक ध्यान : नव-यौवना जकाँ कएल जाइत अछि। हुनक परिधान मयूर-पुच्छ सदृश चित्र-विचित्र भाव-विकल्प, गीवामे गुञ्जामाला सदृश वर्णमाला । ओ शबरपादकेँ कहैत छथि—हे बसाइ शबर ! तोँ हमरा गुहा (मेरुगुहा)मे लीन कए विकल्प दिशि जएबाक हेतु (दिशि धारण करबाक हेतु) गोहारि नहि करह। हमरा तोँ अपन अभिन्न, आत्माभिन्न गृहिणी बुझह, हम नामहिसँ सहजसुन्दरी, त्रिपुर-सुन्दरी, स्वतः चिरन्तन सुन्दरि छी, हमरा तोँ ओही सहज शून्यरूपमे विहार करए दएह। नाना अविद्याजनित दोषलभ ओहि सहस्रारस्थ (महासुख-चक्रस्थ) शून्यस्वरूप वृक्षमे लटकल कहि, ओहि सभसँ वस्तुतः ओ वृक्ष चाँपल भए भौंतापल प्रतीत होएत (ध्यान देलासँ)। विषय-वासना कोनो सङ्ग नहि, (शुद्ध शून्यरूपा) शबरी ज्ञानमुद्रा (विमर्श स्वरूपिणी) एकसरे एहि सुमेरुपर्वतमे (चित्त-) मयूरीपर कुलैत छथि; कानमे बकला (चक्र वा प्रपञ्च)क प्रतीक कुण्डल तथा वक्ष (शिवक पुं-चिह्नक प्रतीक) धारण कएने छथि[1]। काय, वाक् तथा चित्त एहि तीन् तत्त्वक छाउपर पड़ि शबर सामरस्यमे (क हेतुसँ) शय्या बिछान लेल। भुजङ्गधारी शिवरूप बनल शबर अपन क्लेशविदारिणी, त्रिविधताप-संहारिणी अर्थात्मिका एहि नैरात्माक प्रीति-लोलाक सङ्ग राति (कुण्डलिनीयोगक अवधि) बिताओल। हृदयक महाराग-ताम्बूलक आ' सामरस्यसौरभयुक्त कर्पूरक भोग कएल। शून्य-चिन्मयी महामुद्राकेँ कण्ठमे (विशुद्धचक्रमे) लगाए कहैत-छथि शिवरूपमे शक्तिसम्बद्ध भए राति बिताओल। हे बालयोगिन् ! गुरुवाक्-पुष्पबाणसँ कुचित्तकेँ लक्ष्य कए वेध करह, कुचित्तक विनाश करह, तदनन्तर परम मोक्षक भेद एकहि संधान (गुरुमन्त्रबल)सँ करह। गुरुतर रोषें उन्मत्त शबर सहस्रारपर या मेरुशिखरपर, वामदक्षिणक सन्धिस्थलमे प्रवेश कए परमपद, परमशिवत्व लाभ कएल। आब शबर मायासँ, विषय-वासनासँ, सङ्गसँ कोना ? आब तँ ओ मुक्त भए गेल छथि।

१। क्रम 'एकसरे' से परमशिवमे निरुद्धिता नहि कहल गेल अछि, कारण ई० टी०मे 'चक्रपुरुषकाने निरुद्धा' देल अछि। ओ कक्ष या उपाय शिव (द० प० कौ भूमिका अनु० ४१) बामक कहल छथि। 'एकसरे' से केवल पराक्रमविरहितता बुझबाक थिक [द० ई० टी०]।

२ (५०)

गअणत गअणत तइला बाड़ी[1] हेरुवे कुराड़ी ।
कण्ठे नैरामणि राति जागइते पवाड़ी ॥
छाड़ छाड़[2] माया मोहा विषम दुग्घोड़ी ।
महासुहे विलसन्ति शबरो लइआ सुएमेहेली ॥
हेरि से मेरि तइला बाड़ी खसमे समतुला ।
दुक्ख[3] ए से[4] रे कपासु फुटिला ॥
तइला बाहिर पासेँर जोइणीबाड़ी कण्ठा[5] ।
फिटेलि अन्धारि रे आकाशकुलिआ ॥
कहूरि[6] पाकेला रे शबरा शबरि मातेला ।
अणुदिन[7] शबरो किम्पि न चेअइ महासुहें भोला ॥
चारि दासे गड़िला रे दिआ[8] पञ्चाली[9] ।
तहिँ तोलि शबरो डाह कएला कान्हइ सगुणशिआली ॥
मारिल भवमत्ता रे दह विहे दिघलि घली ।
हेर से शबरो निरेवण भइला फिटिलि शबराली[10] ॥

× × ×

गअण-गअणमे तेसर बाड़ी किकसोरि कुठारी ।
कण्ठे नैरात्मा बाला जगैते उपाड़ी ॥
छाड़ छाड़ माया मोहा विषम दुन्दुला ।
महासुखे विलसैत शबर कए शून्यमहिला ॥
हेरि से मोर तेसर बाड़ी खसमे समतूला ।
दुक्ख हे ! से रे ! कपास फुटला ॥
तेसर बाड़ीक पासे क्योरुआबाड़ी कण्ठा ।
फाटल अन्धार रे ! आकाश कुलएला ॥

१। क्षेत्र—बाड़ी २। क्योरुआ। शास्त्री, क्षेत्र—छाड़ छाड़
३। क्योरुआ। शास्त्री, क्षेत्र—दुक्ख ४। क्षेत्र—एसे
५। क्षेत्र—ता एला ६। क्योरुआ। शास्त्री, क्षेत्र—कहूरिना
७। क्योरुआ। शास्त्री, क्षेत्र—अणुदिन ८। क्योरुआ। शास्त्री, क्षेत्र—रे दिआँ।
९। चारिओ—ई० टी० क प्रपञ्च पा० टि०मे 'चहराली' पाठ प्रदत्त।
१०। क्योरुआ। शास्त्री—पवराली

कङ्गूरि पाकल रे। शबरा शबरी साहल।
अनुदिन शबर किमपि [किछु] न देखइ महासुखें भोल [र] ॥
चारि नाले बहि रे! देख चण्डाली (चण्डाली)।
तहँ तोलि शबर डाहु कएला कलह सगुण शृगाली ॥
मारल भवमत्ता रे। दशदिशे दड वैल बली [लि]।
हेरि से शबर निवृत्त भेल फाटल शबरालि [शबरत्व] ॥

शून्य, प्रतिशून्य एवं महाशून्यरूप तेसर घाड़ीकें चतुर्थशून्यरूप हृदयक कुठारसँ निष्कोरि कण्ठस्थिता महतीशक्ति, महामुद्रा (गृहिणी) शून्यताशक्ति लामत भए प्रज्ञाहि देल, वासनादिक वृक्षसभकें [जे ओहि शून्यसभमे संलग्न छल, तकरा] उखाहि फेकल। हे योगयोगिन्! माया-मोह, विषम द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व, त्यागह। देखह, आइ शबर शून्य (गगन) हृदया-महिला शिखरिकें अन्तर्लीन कए शिवरूपमे सामरस्य-सुखक भोग करैत छथि। तेसर घाड़ीकें, प्रकाश-प्रतिबिम्बसंमिलित महाशून्यकें, गगनक सन्तुल देखि हमर उज्ज्वल सदृश आत्मज्ञान स्फुटित भेल। महाशून्यक निकटे (केवल) ओहि प्रकाशपुञ्जक अनुसन्धान भेल, अज्ञानान्धकार काटि गेल, ई तहिना असंभव छल जेना आकाशकुसुम। चित्त परिपक्व भेल, प्रबुद्ध भेल (कङ्गूरिफलसदृश), ओकर आस्वाद कए सशक्ति शबर उन्मत्त छथि, परमानन्दरस-निर्भर छथि। अनुदिन सामरस्यमे डूबल, विभोर, शबरकें अन्य किछु नहि सुझैत छन्हि। ओहि चञ्चल विषय-वासनामय चित्तकें स्थिर कए चतुरानन्दमे निवसित कएल, ताहि दशामे शबर ओहि चित्तकें तौलल (ओजन बुझल) आ पुनः ओकरा दग्ध कए निर्गुणने मीलि गेलाह, सगुण शृगाली विलिप्त अछि [विषद्वयतो देखो खिन्ना छथि अनादर देखि]। अरे! भवमत्त नीच (मायाबद्ध) चित्तकें मारि, दशहु दिशामे ओकर बलि दए देल आ आब सभक रहस्यक साक्षात्कार कए शबर स्वयं निर्गुणस्वरूप, परमशिवरूप, भए गेलाह; शबरत्व, जीवात्मत्व आब चलि गेल, परमात्मत्व, परमशिवत्व आबि गेल।

लुइपाद

१ (१)

काआ तरुवर पञ्च वि डाल।
चञ्चल चीए पइठो काल ॥

दिढ[1] करिअ महासुह परिआण।
लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥
सअल समाहिअ[2] काहि करिअइ।
सुख दुखेंतें निचिंत मरिअइ ॥
एहि एउ[3] छन्दक बान्ध करण कपटेर[4] आस।
सुनपाख भिति लेहु रे पास ॥
भणइ लुइ आम्हे भाएँ दिठा।
धमण चमण बेणि पिण्डि[5] बइठा ॥

× × ×

काया तरुवर पाँचो डाल।
चञ्चल चित्त पैसल काल ॥
दृढ़ करि महासुख परिआण।
लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥
सकल समाधितः की कुत होए?
सुख-दुखेंसें निश्चिन्त मृत होए ॥
एहि एहु छन्दक बन्ध करणकपटक आस।
सून-पक्ष-भित्ति लेहु रे पास ॥
भणइ लुइ हमे ध्याने दिठा।
धमण-चमण दुइ पीड़ी बैठा ॥

शरीर वृक्षवत् अछि, पाँचो ज्ञानेन्द्रिय तकर शाखा-प्रशाखा, जाहि द्वारा चित्त चञ्चल रहैत पर विषयवासना ओहिमे प्रवेश कए लैत अछि। मुक्तिक इच्छिएँ तँ विषयवासना चाले थिक। तँ चित्तकें स्थिर राखब आवश्यक, तहि-खन ओकर विकास, चिन्मयसम्प्राप्ति, सम्भव आ' बिनु चित्तक चिन्मयताक प्राप्तशक्तिकें शिवमे लीन करब सम्भव नहि, दोसर शब्दमे सामरस्य-सुखानुभूतिक हेतु चित्तक शोधनपर, कुचित्त-विनाशपर, जोर देल बालयोगिगणकें गुरुसँ रहस्य-साधना-पद्धति पुछबाक हेतु आदेश देल छथि। हुनक कहब अछि जे आन-आन यौगिक प्रक्रियासँ कोनो फल नहि। ताहिसमसँ सुख-दुखक

१। सेन—दिढ़ २। सेन—एहिअ ३। सेन—एउ
४। बगोची। कारबो, सेन—करणक पाटेर ५। सेन—पाडिअ

चक्र बन्द होएब कठिन आ' सएह चक्र तँ शत्रु थिक। एहि चक्रक विनाशे त मुक्ति थिक। किन्तु एहि चक्रक विनाशक हेतु इन्द्रियक आहार-विषयसंभर्केँ, ओहिपर लागल आशा-आकांक्षाकेँ, मनसँ ठेलए पड़त,शून्यस्वरूपिणी, गगनहृदया चितिक सङ्ग, अपरिणामिनी शक्तिक सङ्ग, तादात्म्य आवश्यक,हुनका चिति मानि ओहिपर ओकरय आवश्यक। तँ हुएबादक अनुरोध अछि जे ओहि शून्यरूपिणीक चितिपर अवलम्बित होउ, ओहि चितिक सामीप्य बढ़ाउ, अन्तरङ्गता बढ़ाउ। ओ सिद्धाचार्य तँ स्वयं अनुभवज्ञान छथि, नाड़ी-योग-साधन द्वारा ओ ई साक्षात् रूपसँ देखने छथि जे इड़ा-पिङ्गला दूनूक मध्यभूता ब्रह्मनाड़ीमे कुण्डलिनीशक्ति प्राणशक्तिक सङ्ग मीलि ऊपर कोना उठैत छथि तथा ओहो सङ्गममूला सुषुम्ना-नाड़ीक अन्तरङ्गा ब्रह्मनाड़ीक द्वारा सिद्धक प्राणवायु महती शक्तिक रूपमे सहस्रारमे आनन्द, अनिर्वचनीय आत्म-शक्ति-मिथुनक आनन्द, दैत अछि। ओएह प्राणशक्तिक सङ्ग, कुण्डलिनीशक्तिक सङ्ग, प्रकाशरूप आत्माक सामरस्य अथवा, संक्षेपमे, शक्तिक सङ्ग शिवक सामरस्य तँ महासुख थिक वा मुक्ति थिक।

२ (२६)

भाव न होइ अभाव ए जाइ।
अइसन[1] संबोहेँ को पतिआइ॥
तुइ भणइ बढ़ दुलक्ख बिआणा।
तिअ धाए बिलसइ उह लागे ण॥
जाहेर कण्णचिह्नरूव ण जाणी।
सो कइसे आगम वेएँ बखाणी॥
काहेरे किस भणि मइ दिबि पिरिच्छा।
उदकचान्द जिम सच्च न मिच्छा॥
तुइ भणइ मइ भावइ[2] किस।
जा लइ अच्छम ताहेर उह ण दिस॥

× × ×

भाव न होइ अभाव न जाइ।
अइसन संबोधेँ के पतिआइ?

१। बनाक। शास्त्री, सेन—आइस २। बधेको। शास्त्री, सेन—भाइव

तुइ भणइ बढ़ दुर्लक्ष्य बिआना।
त्रिधातुएँ बिलसइ, उह लागे ण॥
जाहि (केर) वर्ण-चिह्नरूप न जानी।
से कइसेँ आगमवेदेँ बखानी॥
फकरा की भनि हम देब परीक्षा?
उदकचान्द जिमि सत्य न मिथ्या॥
तुइ भणइ हम भावी काहि।
जे लए छी ताहि (केर) ऊह न देखि (खी)॥

परमसत्यक अस्तित्व अलक्षित अछि, कारण अछि विषयवासनाक कोमराहटि। अनस्तित्वो नीक जकाँ मनसँ पैसेत नहि अछि। एहन ज्ञानकेँ के पतिआएत? तुइ कहैत छथि—वास्तविक तत्त्वक परिज्ञान वा अभिज्ञान दुष्प्राप्य थिक, साक्षात् रूपमे ओ परमशिवक परमा स्फुरत्ता, महासत्ता, बोधगम्या नहि। ओ महासत्ता, चिति वा अपरिणामिनी सत्ता वा महती शक्ति अपन क्रोड़क माध्यम रखने छथि काय, वाक् तथा चित्त, अकरा एक शब्दमे त्रिधातु वा त्रितत्त्व कहि सकैत छी। कोना कीड़ा करैत छथि, ताहि दिशि ऊह कहाँ होइत अछि? ओहि कीड़ाक जँ ऊहापोह भए जाए तँ आत्मा वा परमशिवक परिचय अनायास भेटि जाएत। संक्षेपमे, प्रत्यभिज्ञा उपलब्ध भए जाएत। एहि आत्मप्रत्यभिज्ञाक हेतु छोटछीन सूत्रक निर्देश असम्भव। परमा सत्ताक आकार कोनहु वर्ण-चिह्नक आकार रहनि, तखन ने कोनहु सूत्रक निर्देशेँ हुनक प्राप्ति भए सकय? से तँ सम्भव नहि, तखन, हुनक वर्णन, आगम रहओ वा वेद, कए कोना सकत? कओ जँ प्रश्न पुछत तँ ओकर हृदयङ्गम उत्तर हम दए कोना सकबैक? अवाङ्मनसगोचरक स्वरूपकेँ शब्दसँ कोना व्यक्त कएल जाए? परन्तु परमात्मा वा वा परमशिव वा परमाशक्ति, ये कहल जाए, अव्याख्येय तत्त्व थिक। अधिकसँ अधिक ओहि प्रकाशक प्रतिबिम्ब मात्र देखल जा सकैत अछि। जेना जलमे चन्द्रक प्रतिबिम्बकेँ सत्यो कहि सकैत छी, यथार्थ चन्द्रक स्वरूप भासित होएबाक कारणेँ, असत्यो कहि सकैत छी, कारण ओ थिक तँ प्रतिबिम्बे, वास्तविक चन्द्र नहि, तहिना एहि जलतकेँ। परमशिवक स्वातन्त्र्य-शक्तिक स्फुरण वा परिणमन थिक ई विश्व, एहि विश्वरूपमे ओ अपनाकेँ आभासित करैत छथि, प्रतिबिम्बित करैत छथि, तेँ (तन्त्रक अनुसारेँ) ई जगत्

सत्ये थिक, हँ ओहि परमशिव वा परमात्माकेँ विश्वोत्तीर्ण मानलाकेँ तँ विश्व मिथ्ये बूझि पड़ल, अधिकसँ अधिक प्रतिबिम्बे। तुह कहैत छथि—तखन हम ई की करैत छी? कोन शक्तिमे ओझरायल छी? की सत्य छथि वा मिथ्या? जनिका पकड़ने छी तनिक ऊह नहि होइत अछि, की करू किछु कुरैत नहि अछि।

गुण्डरीपाद

१ (४)

तिअड्डा चापी जोइनि दे अङ्कवाली।
कमलकुलिश पाटि करहुँ बिआली॥
जोइनि तँइ बिनु खनहिँ न जीवमि।
तो मुह चुम्बी कमलरस पीवमि॥
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ।
मणिकुले वहिआ ओहिआले समाअ॥
सासु घरें घालि कोञ्चा ताल।
चान्दसुरवेणि पइठा फाल॥
भणइ गुण्डरी अम्हे कुन्दुरे वीरा।
नरअ[1] नारी माझेँ उभिल चीरा॥

× × ×

तिअड्डा[2] चापि योगिनि! दे अङ्कपाली[3]।
कमलकुलिश पकि करी बिआली॥
योगिनि! तोहि बिनु खनहु न जीवी।
तोर मुख चूमि कमलरस पीवी॥
खेपहु योगिनि लेप न जाए।
मणिकुले वहि उड्डीवाने समाए॥
सासु घरे घालि कोंचल (कोंचि) (समाए)[4] ताल।
चान-सूर्ण दुइ पइठा फार (ह)॥

१। लेख—नरअ २। नाड़ीत्रय वा बिन्दुत्रयक अड्डा, योन्यत्र—चपीको (पा० टि०)
३। चपीको—सं० ताला
४। कोञ्चा = कोंचा वा कुंचिका (द्रष्टव्य चपीको—सं० टीका)

भणइ गुण्डरी हमे कुन्दुरे[1] वीर।
नरक नारी (क) माझे उद्भूत चीर॥

हे योगिनि! सहचरि मानवीशक्ते! त्रिअड्डा (त्रिवृत्ता) (योनि) चापि अपन कोरमे बैसाउ, अथवा, हे महतीकुण्डलिनीशक्ते! अहाँ नाड़ीत्रयकेँ चापि ओहिपर आरूढ़ भए अपन चिद्रूपरूपता दान करू। कमल-कुलिश वा भग-लिङ्गक घर्षण कए अहाँ हमरा बिकाली, कालरहित शक्तिक अभिन्न, बनाउ। हे योगिनि! भैरवरूपमे हम अहाँक बिनु क्षणो भरि नहि जीवि सकी, अहाँक मुखक चुम्बन कए, ओकरे मधुरस पीबि, हम जीबि रहल छी। उन्मेषो भेला पर, योगिनी लिप्ता नहि होथि (स्वाधिष्ठानमेँ मूलाधारो भेला पर की कुण्डलिनी-शक्ति हुतसत्त्वा रहबे करथि)। की शक्ति मणिपूरमे बहैत उड्डीयानपीठमे बैसि जाइत छथि। हे शक्ते! अहाँ सासु स्वामीकेँ शरीर-गृहमे पायल कए मणिमूलनिरोधेँ बन्द कए देल। आब चन्द्र-सूर्य (इड़ा-पिङ्गला) दुनूक पक्षकेँ दूर कए मध्य-विकास कराउ। गुण्डरीपाद कहैत छथि—हम कुन्दुरयोगमे (द्वीन्द्रियसंयोगमे) वीर छी, नर-नारी दुनूक मध्य उद्भूत वीर छी (जाहिमे दुनू लीन भए जाए, तेहन मध्य, परमात्मरूप भए गेल छी)।

आर्यदेवपाद

१ (३५)

जहि मण इन्दिअ पवणा[1] होइ णठा।
ण जानमि अपा कहिँ गइ पइठा॥
अकइ करुणाहमरुलि वाजअ।
आजदेव निराशे[2] राजअ[3]॥
चान्दरे चान्दकान्ति जिम पतिभासअ।
थिअ थिकरये तहिँ दलि पइसअ[4]॥
छाड़िअ भय घिण लोआचार।
चाहन्ते चाहन्ते सुण विआर॥

१। कुन्दुर योग=कमरस-योग। द्र० कुन्दुर योग=द्वीन्द्रिय-संयोग—ता० शै०-ग०-पा० पृ० १३०
२। लेख—इन्द्रियगण (छन्द, अर्थसंगति (ख)) ३। लेख—णिराशे
३। चपीको। शास्त्री, लेख—राजइ (शुद्धक दृष्टिएँ अनुपयुक्त)
४। चपीको। शास्त्री, लेख—पइसइ

आजदेवें सअल विआरिउ[५] ।
भअ घिण दूर[६] निवारिउ ॥

× × ×

जहँ मन इन्द्रिय पवन होइ नष्टा ।
न जानी आत्मा कहँ गइ पइठा ॥
अकट कवला - डमरु वाअए ।
आयदेव निराधें रोअए ॥
चन्दे चन्द्रकन्त जिमि प्रतिभाए ।
चित्त विकरणे तहँ टरि [जा] पइठाए ॥
छाडि भअ घृण [?] लोकाचार ।
देखैते देखैते सून विआर ॥
आयदेवें सकल विआरल ।
भअ घृण [?] दूर निवारल ॥

उतए मन-इन्द्रिय-प्राणपवन सभ समाप्त भए गेल, तएँ आत्मा कतए जा कए पैसल से बुझबाने नहि अबैत अछि । अद्भुत वा अक्षय कल्याणमय शिवक डमरू बाजि रहल अछि, आयदेव आध सकल आशा-आकांक्षासँ विहीन शोभित भए रहल छथि, विशुद्ध आनन्दमे मग्न छथि, विषय-वासनासँ मुक्त छथि । चन्द्रक सम्पर्कमे जेना चन्द्रकान्तमणि वा चन्द्रिका चकमक लगैत अछि तहिना विकल्पजाल विशुद्ध चित्तक सम्पर्कसँ शुभ्र प्रकाशरूप धारण कए लैत अछि, चित्त जखन चित्तिक रूपमे विकसित होइत अछि सकल ओकर विकारो चित्तिलीन भए तत्रुपे भए जाइत अछि । भय-घृणा-लोकाचार आदि (अपाश)केँ छोड़ला पर शून्यस्वरूपिणीक विचरण (वा शून्यक विचार)क अनुभव करैत करैत आयदेवसँ सभ रहस्य विचारल गेल । आध हुनकामे भय-घृणादि नहि रहल, सभक निवारण भए गेल ।

५ । चर्यागीतिकोष । शास्त्री, सेन—विहरिउ (अन्तिम पंक्तिक तुक नहि मैलए)
६ । चर्यागीतिकोष । शास्त्री, सेन—दूर (छन्दोभङ्ग, अनुष्टुभ् प्रतीत)

दारिकपाद

१ (३४)

सुन कइण रे[१] अभिनवारें काअवाक्चित्त[२] ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलें ॥
अलक्खलक्खणचिन्ता महासुहें ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलें ॥
किन्तो मन्ते किन्तो तन्ते किन्तो रे झाणवखाने ।
अपइठानमहासुहलीलें दुलक्ख[३] परमनिवाणे ॥
दुःखें सुखें एकु करिआ भुञ्जइ इन्दीजानी[४] ।
स्वपरापर न चेअइ दारिक सकलानुसर आनी[५] ॥
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे[६] रे बाआ ।
लुइपादप्रसादें दारिक द्वादश भुअणें लआ ॥

× × ×

सुन - कइण रे । अभिनवारें काअवाक्चित्ते ।
विलसइ दारिक गअणहिं पारिमकुलें ॥
अलक्खलक्खणचिन्ता महासुखें ।
विलसइ दारिक गअणहिं पारिमकुलें ॥
को तुअ मन्तें को तुअ तन्तें को तुअ रे । ध्यान-वखाने ।
अपइठान - महासुहलीलें दुर्लक्ष्य - परमनिवाणे[४] ॥
दुःखसुख एक कए भोगइ इन्द्रिय जानि [इन्द्रियज्ञानी] ।
स्वपरापर न देखइ दारिक सकलानुसार आनि ॥
राआ राआ राआ रे । अवर राअ मोहे रे । बाआ [?] ।
लुइपादप्रसादें दारिक द्वादश भुवने लअ [?] ॥

१ । चर्यागीतिकोष । शास्त्री, सेन—सुनकइणरि २ । सेन—चित्त
३ । चर्यागीतिकोष । शास्त्री, सेन—दुलख ४ । चर्यागीतिकोष, सेन—इन्दी जानी (स्त्री)
५ । चर्यागीतिकोष । शास्त्री—एक सानुसरमाणी ६ । चर्यागीतिकोष । शास्त्री—मोहेरे
७ । चर्यागीतिकोष (सं० छाया)—'निर्वाणे'

अरे ! शून्य-करुणा अर्थात् शक्ति-शिव अभिन्न भए आचरण करैत कायवाक् चित्तमे विलास करैत छथि, शून्यस्वरूपिणीमे, परम कुल (शक्ति)मे (हमर) अलक्ष्यलक्षण चित्त सामरस्यसुखसँ लीन अछि। तोरा मन्त्रसँ की होएतह ? तन्त्रसँ की होएतह ? ध्यान-व्याख्यानसँ की होएतह ? अनविरल महा-सुखलीलाक सङ्ग दारिकपाद दुर्लक्ष्य परम मोक्षमे लीन भए इन्द्रियक असारतासँ परिचित भए, दुःखसुखकेँ एक बूझि ओकर भोग कए रहल छथि। समस्त जाग-तिक तत्त्वकेँ अनुत्तर परमशिवक आभासक रूपमे स्वीकृत कए दारिक आइ स्व-पर-अपर भेदक अनुभव नहि करैत छथि। अरे ! राजा, राजा, राजा—अन्य राजा (साधक-चक्रवर्ती) सम हँ मोहमे अकड़ले रहि गेलाह, मुदा दारिकपाद गुरुमुख-पादक प्रसादात् द्वादश भुवनपर विजय प्राप्त कएल, ई बड़ संतोषक विषय।

डोम्बीपाद

१ (१४)

गङ्गा जउना माझेँ रे[1] बहइ नाइ[2]।
तहिँ बुड़िली मातङ्गीपोइआ[3] लीले पार करेइ ॥
माहेतु डोम्बी वाहलो डोम्बी वाटत भइल उजारा।
सद्गुरुपाअपसाएँ[4] जाइअ पुणु जिणउरा ॥
पाञ्च केटुआल पटणेँ साङ्गे पिटत काछी दान्धी।
गअणदुखोलेँ[5] सिञ्चइ पाणी न पइसइ सान्धि ॥
चन्द सूज दुइ चका सिठि संहार पुलिन्दा।
बाम दाहिण दुइ माग न चेअइ वाहतु छन्दा ॥
कवड़ी न लेइ बोड़ी न लेइ सुण्डड़े पार करइ।
जो एथे चड़िला वाहवा सो जा [न] इ[6] कुलेँ कुल बुड़इ ॥

× × ×

गङ्गा यमुना माझे रे। बहइ नाव।
तहँ बुड़ली मातङ्गी डोम्बिनि लीलेँ पार करइ ॥

१। चर्यागीतिकोष। शास्त्री—माझेँ रे २। चर्यागीतिकोष। शास्त्री—नाई
३। चर्यागीतिकोष। शास्त्री—मातङ्गी पोइआ ४। चर्यागीतिकोष। शास्त्री—पसाए। सेन—पएँ
५। चर्यागीतिकोष—गअण दुखोलेँ। सेन—गअण-दुखोलेँ ६। सेन—जाअइ

खेवइ डोम्बिनि ! खेवइ हे डोम्बिनि ! वाटे भेल उजुआ[7]।
सद्गुरु-पाद-प्रसादेँ जाइअ पुणु जिण उरा ॥
पाँच कडआरि पड़ैते मारेँ (वा मारि), पीठे कछी बान्धि।
गगन-सेचनीए[8] सींचइ[9] (फेकइ) पानी, न पइसइ सन्धि ॥
चन्द-सूर्य दुइ चक्का सृष्टिसंहार-पोलिन्दा[10]।
वाम दाहिन दुइ मार्ग न देखिअ खेवइ छन्दा ॥
कवड़ी न लेइ, बोड़ी न लेइ, सुण्डड़े पार करइ।
जे एथ चड़िला (जिन्नु) खेवा न जा (न) इ कुलेँ कुल बुड़इ ॥

गङ्गा-यमुना (इड़ा-पिङ्गला)क मध्यमे हे बालयोगिन ! ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्नास्थ सूक्ष्म नाड़ी) एक प्राणवाहक नौका बहि रहल अछि। ओहि स्थानमे अवस्थित महाविद्या-शक्ति वा चाण्डालिनी (मातङ्गी = चाण्डालिनी[11]) मातङ्गीरूपा डोम्बिनी (पोइआ = नीच स्त्री[12]) (शरीरक निम्न प्रान्तसँ ऊर्ध्व-निहारि शक्ति चण्डाली वा) कुण्डलिनी अपन लीला देखाए साधकपुरुषकेँ ऊर्ध्व-गामी (पारगामी) बनबैत छथि। हे डोम्बिनि ! महाशुद्रे ! प्राणनौकाकेँ, चित्त-नौकाकेँ खेबइ, बाटमे आब जीवनक साँझ भेल जाइत अछि, सद्गुरु-चरण-प्रसादेँ पुनः जिनपुर (परलोक) जेबाक अछि, पञ्च-उपदेशक कर्णधार मार्गमे वा माझिर रहैत, पीठमे कछी (वा रस्सी) बान्हि शून्यरूप सेचनीसँ नौकास्थ जलकेँ उबहि फेकइ, जाहिसँ ओ जल मध्यनाड़ी (नाड़ी-हृदय-सन्धि)मे पैसए नहि (अर्थात् विषयवासना प्राण-नौका वा चित्त-नौकामे आँटकि नहि सकए, से देखइ, अविलम्बहिँ 'उबहि फेकइ')। चन्द्र-सूर्य-मण्डल-चक्र दुनू सृष्टि-संहारक प्रतीक, ओहि नौकाक मध्यस्थ दुइ गोट मस्तुल (वा खुट्टी थिक) तहि प्रकारेँ प्राण-वाहमे लीन हुअइ जँ एहि दुनू चक्र- सम्बन्धी (इड़ा-पिङ्गला रूप) दुनू मार्ग दिशि ध्यान नहि जा सकइ। हे बालयोगिन् ! तेहन व्यक्ति, महामुद्रा (ऊपर सम्बोधिता) पार करओनिहारि अथुन्ह से आनन्दे आनन्द,

७। उजुए—Evening Twilight-आर्य दे० वा० को० P. 103 तथा चर्यागीतिको पा०टि०
८। दुचीत—सेचनी [चर्यागीतिको—एहीं सीतक पा० टि०] ९। चर्यागीतिको—पं० बागची 'उइ'पाठ, 'सिंच' दुनू पर्यायक [उपसर्ग अर्थ दे]; सिंच = सींच [मै० कर्म]
१०। पुलिन्द—पोलिन्दा, शब्दरत्न चर्यागीतिको कोएह गोट पा० टि० तथा आर्य दे० शब्द-कोश P. 349 'पोलिन्द' शब्द = मस्तुल। ११। दे० शब्दकोश पृ० ४३ [३० बौद्ध 'चण्डाली'] १२। चर्यागीतिको—कोएह गोट—पा० टि०

हुनका हेतु एकोटा कौड़ी-बौड़ी पारिश्रमिक खर्च नहि करबाक काज। ओ मातङ्गी-शक्ति महाविद्या स्वच्छन्द भए आनन्दसँ पार करैत आपन छथि। एहि प्रकारें पारगमन करबाक हेतु जे नहि चित्त-प्राण-नौकापर सवार होएताह, किन्तु ओकर बाहसँ परिचित नहि रहताह, से देह-देहहिमे[१२] दृष्टि जएताह वा (जेना 'कूल' मानि कहल गेल) इतस्ततः तटहिपर दृष्टि जएताह[१३]।

कुक्कुरीपाद

१ (२)

दुलि दुहि पिटा धरण न जाअ[1]।
रुखेट तेतलि कुम्भीरे खाअ॥
आङ्गन घरपण[2] सुन भो बिआती।
कानेट चौरे निल अधराती॥
दुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ।
कानेट चोरें निल का गइ[न] मागअ॥
दिवसइ बहुड़ी काइह[3] डरे भाअ।
राति भइले कामरु जाअ॥
अइसन चर्य्या कुक्कुरीपादें गाइल।
कोटि मझें एकु हिअहि समाइल॥

× × ×

दुली दुहि पीठ धारण न जाए।
रुक (वृक्ष) तेतलि कुम्भीरे खाए॥
आङ्गन घरपण (गृहांगन) सुन हे बिआती (प्रसूती)।
कानेट (कर्णफूल) चोरे लेल अधराती॥
ससुरा निद गेल बहुरी जागए।
कानेट चोरे लेल का गति मागए॥
दिवसे बहुरी काइ [काइ कौआ] क डरे भागए।
राति भेले कामरु जाए॥

१२। ध० हो० तथा आओर इहलम 'देहेऽपि कथित कुर्यं ...' स० ध० पृ० ३३०
१३। चर्यागी पृ० ४४ ए० दि०
१। चर्यागी (शास्त्री, सेन—बाग)। २। सेन—घरपण ३। चर्यागी, सेन—काग

अइसन चर्या कुक्कुरीपादें गाइल।
कोटि माझे एक हिअहि न समाइल॥

दुली शब्दक दू अर्थ—कच्छपी[1] आ द्वयाकार, लोन होएबाक स्थान 'महासुखकमल'[2] वा सहस्रार, वस्तुतः कच्छपीमहुकें देह बाहर-भीतरक दृष्टिसँ द्वयकार कहि सकैत छी। अस्तु। प्रथम पंक्तिक तात्पर्य एतबे कहि जे सहस्रारक अमृत दृष्टि (दूनूक मध्य सामरस्य स्थापित कए मिथुनामृतस्नान दृष्टि) पुनः ओकरा मणिपीठमे धारण नहि करल जाए सकैत अछि (कुण्डलिनी-उत्थान द्वारा सामरस्य सुचित्तक पश्चात् प्रत्यावर्तनक प्रश्न नहि उठैत अछि)। आन-पुत्तक पक्ष आ' अम्मत तेतरि सहस (कु) दिन्नेकें, कुम्भीर जन्तु वा कुम्भक प्राणायाम खा लैत अछि। हे जगत-प्रसूति महामुद्रे सुनह, अमरात्रिमे (कुण्डलिनी उत्थान-कालमे) कर्णभरण (कर्ण द्वारा ग्राह्य नाद-पवन) सामरस्य चोरा लेलक, ससुर सहस्रार स्वरितादि रवास अवरुद्ध (निष्क्रिय) भए गेल, वधू-सहस योगिनीगण जागलि रहए। अखन कर्णभरण नाद-पवन चोरे लए लेलक, तखन पुनः ककरासँ माङ्ग ? दिनमे वधू काइ (काइकौआ)सँ डेराए जाइत छथि, राति भेले प्रियतमकें कामरु पहुँचबैत छथिन्ह या कामरूप जाइत छथि (कामसाधनार्थ) अर्थात् प्राणक आरोहक क्रममे कुण्डलिनी-महामुद्रा कालपुरुषसँ ग्रस्त रहथि, किन्तु सहस्रारस्थ भए पुनः शिव-संयोगने उन्मुखी होथि। एहन चर्या कुक्कुरीपाद गबैत छथि, कोटिमे एकहुक हृदयमे ई रहस्य पैसल नहि।

२ (२०)

होइ निरासी समरस भतारे[1]।
मोहोर विगोआ कहण न जाइ॥
फेटलिअ गो माए अनदरि राहि।
जा एथु चाहाम सो एथु नाहि॥
पहिल बिआण मोर बासनपूड़ा।
नाहि बिआरम्ते सेव बाहुड़ा॥

४। दुली—कच्छपी—द० शब्दकोश
५। द्वयाकारं वस्तिक स्थानं तत्र महासुखकमलं दुलि इति संध्याभाषयोक्तम्
चर्यागीतिकोष टी०
१। चर्यागीतिकोष। शास्त्री भतारि

ज्ञानशौवण मोर भइलेसि पूरा।
मूल निलणि[1] बाप संहारा॥
भणथि कुक्कुरीपा ए भव थिरा।
जो एथु बुझइ सो एथु वीरा॥

× × ×

हम निरासी सभम भतारे।
हमर विगोप्ता कहल न जाइ॥
फाडल मे माए! अन्तःपुरी देखि।
जे एत देखी से एत नाहि॥
पहिल विआन मोर वासनापुर (?)।
ताही विचारैते सेहो बेवारा॥
ज्ञान यौवन मोर भेल पूरा।
मूल लाखि बाप संहारा॥
भणथि कुक्कुरीपा ई भव थीरा।
जे एत बुझइ से एत वीरा॥

हम (भगवती महामुद्रा) स्वाभाविक परमकल्पस्वरूपिणी रहबाक कारणें निरासक्तित छी, शून्यस्वरूप भग या चित् (चित्तो तँ चित् यनि ज्ञानत अछि) हमर भर्त्ता, स्वतः हम चित्तशक्तिक या चिति। हमर पाणिविद्या के से फाडल नहि जाए, हे मैया! हम अन्तःपुर (सम्पूर्ण चित्त-जगत्) दिशि ताकि ओकर विषय-वासनाकें छोडि देल। जेना कहाँ एहि अन्तकें देखैत छी, तेना अछि नहि, अर्थात् असत् अछि वास्तव में असत् अछि मूला शक्तिक आभास होएबाक कारणें हमर पहिल विज्ञानमे वासनासम्पन्न ई देह प्रसून भेल, ताही सभपर विचार करला सँ वासनासम्पन्न देहो देखनीये। ज्ञान-यौवन या उद्दाम यौवन हमर पूर भेल, चित्तिरूपमे (ब्रह्म-) मूलमे पैसि ओकरा चिन्हल, वासनादिजनक चित्तक संहार (विनाश) कएल कुक्कुरीपा कहैत छथि—ई जगत् स्थिर अछि, जे ई रहस्य बोध एकाँ बुझैत अछि से वीर अछि (जगत् स्थिर, स्थिरा शिवाभ्य आभास होएबाक कारणें)।

एहिठाम महामुद्राक उक्ति अछि या कविक, से समस्त गीतमे सुस्पष्ट नहि अछि। ई अनुसन्धान किछु उपयुक्त प्रतीत होइत अछि जे अन्तिम चारि

१। चर्यागीत। शास्त्री, संस्—चर्यागीति।

पंक्ति कविक उक्ति अछि, अवशिष्ट महामुद्राक किन्तु, अधिक समीचीन बुझना जाइत अछि ई अनुमान जे समग्र गीत कविक अभिप्राय प्राणशक्तिक उक्ति थिक, तें "मूल..... संहारा। वस्तुतः सिद्धपाद चित्तशक्तिक संहार कएल, किन्तु हुनक अभिप्रायमे शक्तिकी वेला बाजि सकैत छथि।

३ (४८)[1]

कुलिशाब्जयुद्धं प्रचिष्टाः।
समताचोगस्य सैनिकसमूहाः॥ १॥
विषयेन्द्रियग्रामानहन्।
शून्यतारागो महासुखनामा॥ ध्रुवपद॥
तूर्यशब्दः शङ्खध्वनिर् अप्रतिहतनादं वदति।
मोहभववलानि दूरातीतानि॥ २॥
सुखपुरं शिखरे संस्थाप्य सर्वम् आकृष्टं [संगृहीतं वा]।
अंगुलिम् ऊर्ध्वं विपया कुक्कुरीपादो वदति॥ ३॥
अयं त्रैलोक्ये महासुखेन जयति।
तत्त्वस्यार्थं शब्दान्तरेण कुक्कुरीपादेन कथितः॥ ४॥

× × ×

कुलिश - कमल - युद्ध प्रचण्ड।
समताचोगक सैनिक समूह॥ १।
विषयेन्द्रिय - ग्राम मा ल।
शून्यताराग महासुखनामा ध्रुवपद॥
तूर्य शब्द शङ्खध्वनि अप्रतिहतनाद बाजए।
मोहभववल दूर बीतल॥ २॥
सुखपुर शिखरे राखि सब आकृष्ट (संगृहीत) (भेल)।
अङ्गुलि कि उठाए कुक्कुरीपाद कहथि॥ ३॥
एहि त्रैलोक्ये महासुखें जय हो।
तत्त्वक अर्थ शब्दान्तरें कुक्कुरीपादें कथित हो॥ ४॥

१ "The Caryā with its commentary, lost in its original form, has been retranslated here from the Tib. version appended at the end of the work." चर्यागीतकोष—[illegible], पृ० [illegible]।

वज्र (लिङ्ग वा शिश्नक प्रकाश) आर कमल (योनि वा शक्तिक प्रतीक) यहि दुनुक सामरस्ययोगमे समस्त काय, वाक् चित्त तत्पर भए गेल। शिव-शक्तिक सामरस्यक बलसँ विषयग्राहक इन्द्रियसमूहक व्यापार नष्ट भए गेल, पुरीतयनाड़ी, विजयक रुद्रध्वनि जकाँ, अप्रतिहतरूपमे प्रवृत्त भए रहल अछि। आर संसारक सामर्थ्य मोहमादाक पराक्रम दूर चल गेल, आर समस्त विषय-वासनासभ सहस्रार (मेरुशिखर) पर, सामरस्यक भूमिकामे, अन्तर्लीन भए गेल, सभ वासना ओहो चक्रमे आकृष्ट भए विलीन भए गेल। आकुर बजाए कुक्कुरीपाद कहैत छथि—त्रैलोक्यक आभास-दोषसभ सामरस्यमे विलुप्त भए गेल। ओ जे सामरस्यानन्दक अपकार करैत छथि, यहि सङ्ग रहलासँ त्रैलोक्यो श्रेयस्कर। ओ (कुक्कुरीपाद) तत्त्वहिक विषयकेँ दोसर शब्दमे (अपन ढङ्गसँ) कहैत छथि।

मुसुकुपाद

१ (१)

काहेरे घिनि मेलि अच्छहु कीस।
बेढ़िल(ड़ि)ल हाक पड़अ चौदीस॥
अपणा मांसें हरिणा बैरी।
खनह न छाड़अ भुसुकु अहेरि (री)॥
तिन न छहुपइ हरिणा पिबइ न पानी।
हरिणा हरिणीर निलअ न जानी॥
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तो।
ए वण चाड़ी होसु भान्तो॥
तरंगते[1] हरिणार खुर न दीसइ[2]।
भुसुकु भणइ मूढ़हिअहि न पइसइ॥

× × ×

काहि घिनि मीलि रहू दीटठा।
बेढ़ल हाक पड़ए बहु दीठा॥
अपणा मांसें हरिणा बैरी।
खनहु न छाड़ए भुसुकु अहेरी (आखेट)॥

१। पानीको, तैल—तरङ्गसे २। पानीको। छाड़ी, तेल—दीखय

तृण न छुवइ हरिणा पिबइ न पानी।
हरिणा हरिणीक निलय न जानी (जानइ)॥
हरिणी बोलए सुन हरिणा तों।
ऐ वन छाड़ि होसु भान्तो॥
तरङ्गमे हरिणाक खुर न देखो।
भुसुकु भणइ मूढ़-हिअहि न पैसइ॥

ककरा (कोन तत्त्वकेँ) पकड़ब, ककरा कृषाक दृष्टिएँ देखि छोड़ब? किछु नहि बुझैत अछि। हम केवल सुन्न छी, चारु भाग विषय-वासनासँ घेरल छी। बुझि पड़ैत अछि विषयसभ नूतिमान भए आर-जोरसँ चलि रहल अछि—एकर आत्मा केँ मारह (नष्ट करह)। हमर चित्त-हरिण अपन हानि, अपनहि मारक लोभमे पड़ि अर्थात् वासना-पूर्तिक लोभमे पड़ि, कष्ट रहल अछि, तेँ अपन शत्रु अपन अछि। वासनापूर्तिक लोभमे रहने चित्तक निकास सम्भव नहि। किन्तु मुमुक्षुपादक आत्मा ओकर ज्ञान नहि छोड़त, ओ ओकर दोष विनाशपर लगल अछि। महती दृष्टि निराकारमहाशून्यांशचित्तरूपमे हरिणीक सदृश छथि। यदि हरिणीकेँ अपन प्रियतम सिद्धक चित्तहरिणक व्याकुलता देखल नहि जाइत छन्हि, ओ सुझैत छथि जे हमर चित्त-हरिण सामान्य हरिण नहि जे तृण-पानीक आहार करैत अछि आ स्थूल जलसँ अपनाकेँ परितृप्त कए सकैत अछि, किन्तु ओ हरिण अपन परिणाम नहि रखैत अछि। ओ शून्यहृदया जगदम्बाक अधिष्ठानसँ अनभिज्ञ अछि, जे कोकरासँ दूर नहि छथि। हे सखि देखि आ शून्यस्वरूपिणी जगन्मायी ओकरा कहैत छथिन्ह हे साधकक चित्त हरिण! हे हमर प्रियतम! सुनह, तों आब एहि विषयवासनाक जंगल-झाड़मे अपनाकेँ नहि ओझरावह, एतएसँ निकलि चलह, चलह, हमरा सङ्ग सहस्रारवनमे विचरह। तात्पर्य एतबे जे चित्त कपट छोड़ि, विकसित भए, चिन्तिक अभिन्न बनि, शिवरूप बनि जाए। जगदम्बा चिद्रूपा छथि, चित्त विकसित भेलापर चिन्तिक अभिन्न बनि जाइत अछि आ साधक, साधकक आत्मा, शिवात्माक पदवी प्राप्त करैत अछि। एहि प्रक्रियाकेँ ध्यानमे राखि चिति अपरिणामिनीशक्ति साधकक मनकेँ अपनामे रमाए, अपन अभिन्न बनाए, सहस्रारस्थ शिवरूपमे परिणत देखए चाहैत छथि।

अस्तु, हे आशय सिद्धक चित्तकेँ जखन मुमुक्षुक योग्य भए गेलैक तखन ओ वह वेगसँ विषयसँ भागल आ मन्दी शक्तिक अभिन्न (अन्तरङ्ग) बनि शिवस्वरूपताकेँ प्राप्त कएलक। कोना? जे रहस्य तेँ मूढ़क हृदयमे पैसि नहि सकैत अछि, मुमुक्षुपादक सगह धारणा छन्हि।

२ (२१)

निसि अन्धारी मुसअ चारा ।
अभिअभखअ मुसा करअ आहारा ॥
मार रे जोइआ मुसा पकरणा ।
जेण तुटअ अवणागवणा ॥
भवविन्दारअ मुसा खणअ गाती ।
चञ्चल मुसा कलिआँ नासक भाती ॥
काल मुसा उह ण दाण ।
गअणे उठि करअ अमिअ पाण[1] ॥
ताव से मुसा चञ्चल पाटन्तर ।
सद्गुरुबोहे करह सो निअतर ॥
जबेँ मुसाएर चार तुटअ ।
भुसुकु भणअ तबेँ बान्धन फिटअ ॥

× × ×

निसि अन्धारी मूषक चारा ।
अमृत-भक्षक मूसक करए आहारा ॥
मार रे ! योगिआ मूसा पकरणा ।
जहिसँ टूटए आवागमना ॥
भव-विदारक मूसा खुनए गाती ।
चञ्चल मूसा खाए (कमोरेँ) भाती ॥
काल मूसा, तनि न धर्म ।
गगने उठि करए अमृतपान ॥
ताहा से मूसा चकस-पाकस [चञ्चल] ।
सद्गुरुबोधेँ करह सो निश्चल ।
जबे मूसाएर चार टूटए ।
भुसुकु भणए तबे बन्धन टूटए ॥

चित्त-मूल चतुर्थ प्रहरान्तमे, अर्थात् प्राणवायुरूप सूर्यक अस्त भेलापर [षट्चक्रयोगक क्रममे] चरैन चरैत सहस्रारस्थ मधुक पान करैत अछि किन्तु

१. चगौरो । शाको, सेन—चरअ अमए भाण

एहि यौगिक प्रक्रियासे स्थायित्व नहि अर्थात् स्थायी रूपमे अमृत-पान करबाक हेतु, सामरस्य-सुख भोग करबाक हेतु, कुचित्त-विनाश आवश्यक। एही विषयकेँ सिद्धगण चित्त-विनाश शब्दें सूचित कएने छथि। आ एहो दृष्टिसँ प्रस्तुत सिद्ध कवि बालयोगीश्वरकेँ प्राण-पवन आ चित्त मूसकेँ मारए कहैत छथि। विषयवासनामे मग्न चित्तक विनाशहिसँ वा तदभिन्न प्राणक नाशहिमे सामरस्य तुष्टि सम्भव, जन्म-मरणक विच्छेद सम्भव। कवि कहैत छथि—ई जे विषयानुरक्त चित्त से यद्यपि षट्चक्र-साधन द्वारा शरीर हेतु सामरस्यक ईषद्भोग करैत अछि, किन्तु सामान्यतया पुनः विषयमे लपटाए अपनहिसँ बाधि कोइँसैत अछि; वस्तुतः ओ थिक भव-विदारक, किन्तु लागल रहैत अछि स्वाधि कोइसामे, अपन पतनक आवासमे। यद्यपि एहि चित्त-मूल नाशक भण्डार विषयवासनाक भोग करैत अछि, आहार करैत अछि, किन्तु ओकर स्थिर भए, समाधिस्थ भए, महाकालरूप भए जाइत अछि, जकर कोनो वर्ण-स्वरूप नहि, तहि रूपमे हँ ओ शून्यस्थानमे विचरण करैत अछि आ सामरस्यक अमृतपान करैत अछि, शक्तिक अन्तरङ्ग बनि। जाधरि ई स्थिरता नहि आएल रहैत अछि ताधरि ओकर छटपटी कहल नहि जाए, ओ मानू चकस-पाकस करैत अछि। एहि छटपटीकेँ कोना दूर कएल जाए, सामरस्यक आनन्द कोना भेटए, चित्त ब्रह्ममयीमे लीन भए शिवरूपताकेँ कोना पाबए ? एहिसभक व्यावहारिक रहस्य सद्गुरुकहिसँ ज्ञातव्य। संक्षेपमे एतबे बुझह [हे बालयोगिन्] जे जखन एहि चित्त-मूलक संचार [ऊपर उठब, पुनः नीचा खसब] रुकि जएतह, तखन समस्त बन्धन टूटि जेतह।

३ (२१)

जइ तुम्हे भुसुकु अहेरि बाइबेँ मारिहसि पञ्चजणा ।
तलिणीवन पइसन्ते होहिसि एकुमणा ॥
तीअन्ते भेला बिहाण[1] मएल रअणि ।
[ग]हण[2]-बिहुणीसे भुसुकु पअपल पइसहि हि ॥
माआजाल पसरि उरे[3] बाँधेलि[4] माआहरिणी ।
सद्गुरुबोहेँ बुझि रे कासु कहिनि[5] ॥

१ । चगौरो । शाको, सेन—विहडि २ । चगौरो । शाको, सेन—हण
३ । चगौरो, सेन—उरेइ २ ४ । चगौरो । शाको—बधेलि
५ । चगौरो । शाको, सेन—कहिनि

× × ×

जं तां भुसुकु अलंट कएबह, मारिहइ पउनजना ।
नलिनीवन पसेले होइहइ एकमना ॥
जीवित नेला बिहान, सुइल रअनी ।
(ए) हम बिनु मांतें भुसुकु पथवन पेसिहइ नहि ॥
मायाजाल पसरि गरे बांधेलि मायाहरिणी
महगुरुआर्थे भुसुक रे । (क) कहर कहिनी ॥

हे भुसुक ! जँ तोँ कुत्सित आलंटार्थ जइबह तँ शब्दस्पर्शादि पञ्चतन्मात्रा आ तत्सम्पर्क पञ्च अनुभूतिक विनाश पहिन कऽ लिइह महाकारदल-प्रवेशमें पूर्ण एकमना भए आराधक अन्तरङ्ग बनि जइबह, तखन कोनो गप । आब तोहरा ज्ञानोदय भए गेलह, अज्ञान-निशा समाप्त भए गेलह । निहत चित्त-मृगक पास उद्धार लए अर्थात् कुत्सित-विनाश कए ओकर मूलभूता शक्तिक सङ्ग हे भुसुक ! तोँ सहस्रार पैसितह, प्राणवायुकें पञ्चचक्र भेद करैत-करैत सहस्रारमे मिलितिहह । संसारक मायाजाल पसरल अछि । एहि जालमे ओझराइ सांवरक महामाया-हरिणीकें पर्यन्त सीमित दृष्टिसँ हृदयमे रखैत छथि, रूप-कल्पना द्वारा स्वार्थवशात् । सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ हमरा हे भुसुक योग्य भए गेल अछि जे कनिक की स्थिति छल । कहबाक अभिप्राय ई जे संसारक विषयवासनाक रूपमे मायाजाल पसरल अछि, ताहिमे नहि फँसि, चिद्रूपिक सङ्ग आत्मरङ्गमे स्थापित कएल जाए, सएह थिक चरम लक्ष्य ।

४ (२७)

अवरातिं भइ कमल विकसिअ ।
बत्तिस जोइणी तसु अङ्ग उहसिअ[1] ॥
चालिअ ससहर[2] माँगे अवधूत ।
रअणहु सहजे कहइ ॥
चालिअ ससहर गअ णिवारी
कमलिनि कमल महइ पजालें ॥
बिरमानन्द विलक्षण सुध ।
जो एहु बुझइ सो एहु बुध ॥

१। उहसिअ । हाओ, सेन—उहसिअ २। ससहर । हाओ, सेन—ससहर

भुसुक भणइ मइ बुझिअ मेलें ।
सहजानन्द महासुह लीलें ॥

× × ×

अवरातिं भरि कमल विकसल ।
बत्तीस योगिनी तसु अङ्ग उल्लसल ॥
चालिअ शशधर माँगे अवधूती ।
रअणहु सहजे कहइ (अवधूत) ॥
चालिअ शशधर गेल निवारी ।
कमलिनि कमल महइ प्रजालें ॥
बिरमानन्द विलक्षण शुद्ध ।
जे एहु (ए) बुझइ से एहु (ए) बुद्ध ॥
भुसुकु भणइ हम बुझल मेलें ।
सहजानन्द महासुखलीलें ॥

चतुर्थित प्रहर (चतुर्थी सन्ध्या) में, अर्थात् प्राणसूर्यक अस्तमित भेलापर सहस्रार विकसित भेल (अथवा निशामे जाए सहस्रार विकसित भेल)। योगिनीक सहस्र-महाविद्याक सङ्ग सायीप्यभाव अगओनिहारि देवीक सहस्र, बत्तीसो नाड़ी कोटि सहस्रारक अङ्गमें उल्लसित कएलक, आनन्दोत्फुल्ल कएलक । प्राणचन्द्र अवधूती वा सुषुम्ना नाड़ीमे ऊपर उठए लागल आ सहज वा सामरस्यक अनुभूति-रूपक परिचय हमरा कहए लागल, अर्थात् हमरा आ अनुभव होअए लागल । समुत्थित ई प्राण-चन्द्र वा चित्त-चन्द्र निर्वाणप्राप्त भेल अर्थात् मुक्त भए गेल, कमलिनी अर्थात् कुण्डलिनी वा प्राणशक्ति सहस्रार-कमलमें प्रवेश कएल महत्त्व मन्त्रमार्ग द्वारा । सद्गुरुक आनन्द विलक्षण तथा विशुद्ध सच्चिदानन्द । जे एहन ई रहस्य बुझए सएह अछि प्रबुद्ध । हमहुँ तँ जीव (प्राण)-आत्मा (परमात्मा)क मेलक वा शक्ति-शिवक सर्वोत्तमिक, सहज सामरस्यिक, प्रसादात् एहि रहस्यसँ परिचित भेल छी । अर्थात् चित्त औहि सामरस्यानुभूतिक आनन्दक साक्षात् अनुभव प्राप्त भेल ई सभव नहि अछि (पहिताग जीवन्मुक्तिपर प्रकाश अछि)।

५ (३०)

करुणा मेह निरन्तर फरिआ।
भावाभाव द्वन्दल दलिआ॥
शून्ता गगण माझें अद्भुआ।
पेख रे मुमुक्षु सहजस्वरूआ॥
जासु सुनन्दे टुटइ इन्द्रिआल।
निभृत[1]शिअ मन देअ[2] उल्लास॥
विषअ विसुद्धें मइ बुझिअ आनन्दे।
गगणह जिमि उजोलि चान्दे॥
ए तैलोए एत वि सारा[3]।
जोइ मुमुक्षु फेडइ अन्धकारा॥

× × ×

करुणा मेघ निरन्तर फरए।
भावाभाव द्वन्द्वल दलए॥
उदित गगन माझे अद्भुता।
पेख रे। मुमुक्षु सहजस्वरूपा॥
जासु सुनन्दे टुटइ इन्द्रियजाल (इन्द्रजाल)।
निभृत शिव मन दिअए उल्लास॥
विषय विसुद्धें हम बुझी आनन्दे।
गगने जिमि इजोरि चन्दे॥
ऐ त्रैलोक्ये एते विसारा।
योगि मुमुक्षु फाडइ अन्धकारा॥

परमा सत्ताक भाव वा अभाव, एहन विकल्पकें दलित कए, हृदयमे करुणा मेघक उत्पत्ति भेल अर्थात् शिवक करुणामय स्वरूपक स्फुरण भेल। शून्य-गगनमे अद्भुत सहज-स्वरूप-प्रकाशक उदय भेल, एहन प्रतीत भेल। अर्थात् शून्य-स्वरूपिणी शक्तिक सङ्ग सम्मिलित शिवक सामरस्यमय स्वरूपक वा विमर्श-सम्मिलित-प्रकाशक साक्षात्कार भेल। हे मुमुक्षु! एहि स्वरूपकें

१। चर्यागीतिकोष। शास्त्री, सेन—निभृते २। चर्यागीतिकोष। शास्त्री, सेन—दे
३। चर्यागीतिकोष। शास्त्री—ए त विसारा। सेन—एतवि सारा

नीक जकाँ देखह, चिन्तह। ओ हँ एहन प्रकाश अछि जकर वर्णन सुनलासँ इन्द्रियजाल वा मायाजाल टूटि जएतह, आ मन निभृत भए जेतह, अनायास उल्लसित। विषय-वासना आब शुद्ध मन आनन्दरूपमे परिणत भेल अछि, कोना जकाँ अछि हँ जेना आकाशमे चन्द्रोदय भए गेल हो, चन्द्रमाक इजोरिया जकाँ कोहि असीम परमशिवक सहज-प्रकाश चित्त-जगतकें व्याप्त कएने अछि। एतेक हँ कहल, मुदा एहि त्रैलोक्यक मायाजालमे पड़ि लोक सभ किछु बिसरि जाइत अछि, किन्तु मुमुक्षु अज्ञान-तिमिरकें फाड़ि देल, तत्त्वज्ञानी बनि गेलाह।

६ (४१)

आइण अणुआना ए जग रे भांतिएँ सो पडिहाइ।
राअसाप देखि जो चमकिअ सांचे कि लाक बोड़ो खाइ॥
अकट जोइआ रे आ कर हाथ[1] लीहा।
आइस[2] सभावें जइ जाणुअसि तुटइ वासना[3] तोरा॥
मरुमरीचि गन्ध[र्व]नगरी[4] दापणपतिबिम्बु आइसा।
बालवकें सो दिढ भइआ अर्थें पाथर जइसा॥
वाञ्चिसुआ जिम केलि करइ खेलइ बहुविह खेला।
वासुआवेलें उअइ सिंगे आकाशफुलिला॥
राउतु भणइ कट मुमुक्षु भणइ कट लक्खला अइस सहाअ।
जइ तो मुद्धा अच्छसि भान्ती पुच्छहु सद्गुरुभाअ॥

× × ×

आदि [में] अल्पत्व [।] है जग रे। अनेकिएँ से प्रतिभाति।
रज्जु-साप देखि जे चमकइ सत्ये कि लाक बोड़ो खाइ?
अकट योगिआ रे न कर हाथ मोलाह।
अइसन स्वभावें यदि जग बुझसि टुटइ वासना तोरा।
मरुमरीचि गन्ध[र्व]नगरी दर्पण प्रतिबिम्ब अइसन।
बालवन्तें से दृढ भेला आर्थें पाथर जइसन॥

१। चर्यागीतिकोष। शास्त्री, सेन—हमा २। चर्यागीतिकोष। शास्त्री—आइए
३। चर्यागीतिकोष। शास्त्री, सेन—वासना ४। चर्यागीतिकोष। शास्त्री—गन्धवनगरी

मन्थ्या पुत्र जिमि केलि करइ लेकइ बहुविह खेला ।

बालुका तेलें बालक खिर्षें आकाश फुलएला ।

राउत भनइ भोह । मुमुक्षु भनइ मोह । तकला अद्वयन स्वभाव ।

यदि तों मूढ़ा छह [तों] भ्रान्त [१] पुछह स्वगुरुपाद ॥

हे बालयोगिन् ! वस्तुतः आदिमें जे अनुत्पन्न छल पहुन जगतकें प्रातिभिक कार्य) तों यथार्थ भूमि स्वीकार करैत छह। तोहरा असत्य जगत् सत्य प्रतिभासित होइत छह, भ्रमक कारणें। किन्तु मुक्त जे रज्जुसर्प देखि जे डरें चौंकि उठैत छथि तनिका वस्तुतः ओ लाग लाग तें नहि लैत अछि मिथ्या धारणा मात्र रहैत अछि जे ओ मार खा लेत, तहिना एहि जगतकें यथार्थ मानि निरन्तर भीति-हु सर्वें व्याकुल रहब भ्रमगात्रक परिणाम थिक। एहि जगतमें किछु होयबवाला नहि, एकर डर का ? हे अकट गए हम कहैत छिअह। एहि भवसागरक सार विषय-जलकें स्पर्शो नहि करह, केवल हाथ [मन] कें नोनछराइन, विषयी, करब होयतह। हे भवसागर किछु नहि सत्ता रहित अछि, विच्छान्तिक आवरणरूप माया मात्र थिक। एहि रूपमे जें तों संसारकें स्वीकार करबह, तें अनवरत विषय-वासना दृढ़ि जायतह। हे मुमुक्षु जे हे संसार तहिना किछु काजक नहि जेना मरुभूमिमे पानि पीबाक इच्छा केवल कष्टकारके, हे कपोलकल्पित सुखदुःखमय संसार तहिना मिथ्या जेना आकाशमे गन्धर्वनगरी अथवा जेना दर्पणमे प्रतिबिम्बित वस्तु [वस्तु भासित होइत, किन्तु वस्तु नहि, छाया-प्रतिबिम्ब मात्र] हे जगत् परमा सत्यक आभास मात्र छाया मात्र, वस्तुतः अपनामे हे किछु नहि, इएह आशय बालवर्त्तमे पकल पाथर कहिओ स्थिर भेल ? वन्ध्याक पुत्र कहिओ जन्म लए खेलायल ? बालुसँ कहिओ तेल बनल ? लहियाकें कहिओ सिंग बहरलैक ? आकाशमे कहिओ कोनो फूल फुलाएल ? एहि सभ प्रश्नक उत्तर एकेटा होएत—कहिओ नहि। तहिना हे जगत् कहिओ यथार्थ तत्त्वक रूपमे उत्पन्न भेल, से नहि। राउत (सिद्ध राजकुमार) हे अद्भुत विषय कहैत छथुन्ह, मुमुक्षु हे अद्भुत विषय कहैत छथुन्ह ते सभ जागतिक विषयकें, वस्तुकें, यही रूपमे बुझह। तथापि जें तों मूढ़े छह तें कोनहु सद्गुरुसँ सम्यक् जिज्ञासा करह।

७ (४९)

सहजमहातत्त्व करिअ ए बेगोए।
खसमसभावें रे बाधत मुक्का कोए ? ॥
जिम जले पाणिआ दलिआ भेद न जाए।
तिम मणरअणा रे समरसे गअण समाअ ॥
जासु नाहि अप्पा तासु परेला काहि।
आइ अनुअला रे आममरण भाव नाहि ॥
मुमुक्षु भणइ कट राजसु भणइ कट सअला एह सहाव।
जाइ ण आवइ रे ण तहिं भावाभाव ॥
× × ×
सहज परातत्त करए रे। त्रैलोक्ये।
खसम-स्वभावें रे। बाधतः मुक्का कोए ॥
जिमि जले पाणिआ दलिआ भेद न जाए।
तिमि मनरअना रे। समरसे गगन समाए ॥
जासु नाहि आत्मा तासु पारक काहि।
आदि अनुपन्ना रे। जन्ममरण-भाव नाहि ॥
मुमुक्षु भनइ कट, राजसु भनइ कट, सकला (इ) एह स्वभाव।
जाइ न आवइ रे। न तहिं भावाभाव ॥

हे बालयोगिन् ! एहि समस्त त्रैलोक्यमे एक सहजरूप, सामरस्यमय शिव-शक्तिक अद्वयरूप, महान् पुरुष जकाँ पसरल अछि, ओही महान् पुरुषक मिथुनक फलरूप थिक हे बाधतो सृष्टि, मायाजाल। ओ आकाशरूपी स्वभावे, शून्यता-स्वभावे, गगनहृदयस्वभावे नें स्वातन्त्र्य वा विमर्शशक्ति थिक परमात्मा वा परमशिवाद्वैतक एहि शक्तिकें, परमात्माक स्वभाव (विमर्शहि स्वभावें) कें पकड़लासँ मुक्ति भेटय मुनिजिन, किन्तु दौर्भाग्यवशात् बड़ थोड़ व्यक्ति तत्त्वज्ञानी भए सकलाह, अधिकांश ज्ञानविहीन उपासना वा धार्मिक अन्ध वयी कए बन्धनमाले रहलाह। जेना जलाशयमे एक लोटा जल देखासँ व्यापक-व्याप्य जलक भेद नहि अनुभूत हो, तहिना मनोरत्न सामरस्यपूर्ण शून्य स्वरूप शिव शक्तिमे मिलि (मैस) देखासँ तद्रूपें भए जाइत अछि। कहलो तें गेल अछि जे साधनाक चरमदशामे चित्त चिति (चित् शक्ति)मे परिवर्तित भए जाइत अछि।

१। भ्रान्तो। राजसु—राजा पुत्र कोए। बेग—बेकार कोए।

एहि अवस्थाकेँ प्राप्त करबाक हेतु आत्मविकास आवश्यक, जकरा आत्मबोध नहि, तकरा परतत्त्वबोध कोना हो ? मुमुक्षु कहैत छथि जे एहि त्रैलोक्यक यथार्थ स्वभाव शून्य आदिमे अनुपलब्ध, तखन जन्म मरणादिक सद्भाव कोना ? एहन भासित होएब भ्रान्ति मात्र थिक। तेँ ई निश्चित रूपेँ मुमुक्षु जे जगतक शून्य स्वभाव थिक, एहि अनुपलब्धमे भावाभावक, आवागमनक प्रश्ने नहि उठैत अछि, राखत मुमुक्षुक इएह धारणा छन्हि।

८ (४६)

बाजणाव पाड़ी पेँडआ खाणेँ बाहिउ।
अदअ बङ्गाले कलेश लुटिअ॥
आजि भुसु[कु][1] बङ्गाली भइली।
णिअ घरिणी चण्डाली लेली॥
दहिअ[2] पञ्चपाटए[3] इंदिविसआ णठा।
ण जानमि चित्त मोर कहिँ गइ पइठा॥
सोण रूअ मोर किन्पि ण थाकिअ।
निअपरिवारे महासुहे थाकिअ॥
चउकोडि भण्डार मोर लइआ सेस।
जीवन्ते मइलेँ नाहि विशेष॥

× × ×

बजमाव पाड़ि पेँडआ-ह्रदमे लेबल।
अद्य-बङ्गालेँ कलेश लूटल॥
आजु मुमुक्षु बङ्गाली भेल।
निज घरनी चण्डाली लेल॥
दग्ध पञ्चस्कन्ध, इन्द्रिय-विषया नष्टा।
न जानी चित्त मोर कत गइ (जा) पइसा॥
सोन-रूप मोर किछु न रहल।
निज परिवारे महासुखे रहल॥
चउकोटि भण्डार मोर लए गेल।
जीवत मुइले नाहि विशेष॥

१. जनीको। शास्त्री—मुमु। सेन—मुमुक्षु। २. जनीको। शास्त्री—दहिअ। सेन—दहि को। ३. जनीको। शास्त्री—पञ्चपाटए। सेन—पञ्च भाटए।

बज्र शिक्षक प्रतीक थिक आ' पद्म यौगिक। तेँ, प्रथम पंक्तिक आशय अछि— शिक्षरूप नौका योगिरूप धारमे लगाए केवल लगलहुँ, अथवा महाशक्तिकेँ, कुण्डलिनीशक्तिकेँ, सहस्रारस्थ शिवक संग मिलाए, शिवरूप भए, आत्मा हमर तन्मयमाने, मैथुनसुखमे, आनन्दातिरेकक, निर्विकल्पक आनन्दक, अनुभव कएलक। शिवशक्ति-अद्वयक उपयुक्त बङ्गालक कारणेँ अनेक दुःख लहल, विषयभोगक कर्मेँ बड़ बड़ कष्ट लहल। आब कोनो कष्ट नहि। आइ हम शुद्ध बङ्गाली (ब—शिव, अङ्गाली—अधिक, तेँ शिवक अधिक) भए गेल छी। आइ स्थूल साधकरूपमे हम द्वैमिनिकेँ अपन घरनी बनाए लेने छी आ' शिवात्मरूपमे परमाशक्तिकेँ कुण्डलिनीक स्वरूपमे अपन अन्तरङ्ग बनाए लेने छी। आइ पञ्चस्कन्ध [पञ्चस्कन्धाभिन्न[4] अहङ्कार-ममकारादिक संवेदना] दग्ध भए गेल, इन्द्रियविषय शब्दस्पर्शादि नष्ट भए गेल। हमर चित्तपर आब औद्दिसभक कोनो प्रभाव नहि, न जाने ओ आइ कतए जाए पैसल अछि (वस्तुतः शून्यस्वरूप शक्तिमे अन्तर्लीन अछि किन्तु दृश्यक आकार कोनो सीमित नहि, जे स्थूल रूपमे शास्त्र भए सकए, तेँ नहि जानी)। आब हमरा हेतु सोन-रूप किछु मूल्यवान् नहि, तृतीयँ एकेँ रूप तटस्थ छी अर्थात् शून्य (सोन) आ' आकार (रूप) दुनूमे कोनहु एकमे अधिक आसक्त छी, एहन प्रश्न नहि अछि, शून्य-आकार दुनूक संकल्प विकल्पक क्षय भए गेल अछि, केवल प्रकाशानन्दचिन्मयक, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञानक एकतासनाक, बोध भए रहल अछि। एहि असीम सामरस्यक आनन्दक अनुभूति लए अनतह नहि जाए पड़ल, अपन परिवारहिमे भेटि गेल, अपन शक्ति द्वैमिनिक अनुग्रहमेँ। आब हमर विषयवासनाक समूलक भण्डारे समाप्त अछि, आब हमरा की सताओत ? आब जेहने जीवन तेहने मरण (जीवन्मुक्तक अवस्थामे स्वतः आनन्दे आनन्द)।

काहु पाद (कृष्णाचार्य)

१ (७)

आलिएँ कालिएँ वाट रुन्धेला।
ता देखि काहु विमन भइला॥

४. पञ्चस्कन्धात्मक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार आ' विज्ञान—ता० बौ० धा० पा० पृ० ५४

काहु कहिँ गइ करिब निवास।
जे मनगोअर सो उआस॥
ते तिनि ते तिनि तिनि हो भिन्ना।
भणइ काहु भव परिच्छिन्ना॥
जे जे आइला ते ते गेला।
अवणागवणे काहु विमन भइला॥
हेरि से काहि निअडि जिनवर वसइ[1]।
भणइ काहु मो हिअहि न पइसइ॥

× × ×

आलिएँ कालिएँ वाट रोधल,
ते देखि काहु विमन भेल॥
काहु कत गइ (आ) करब निवास।
जे मनगोअर से उदास॥
ते तीनि ते तीनि तीनि हो भिन्ना।
भणइ काहु भव परिच्छिन्ना॥
जे जे आइला ते ते गेला।
आवागमनें काहु विमन भेला॥
हेरि से काहु निअर जिनपुर वसइ।
भणइ काहु मोहि हिअहि न पइसइ॥

इडा-पिङ्गला तें सुषुम्नाथ ब्रह्मनाड़ीगत कुण्डलिनीशक्तिक ऊर्द्ध्वगमनमे रोधके, बाधके, भय गेल अछि, से देखि हम, काहुपाद, विमन भए गेल छी अथवा (जेना टीकामे, ठीक विपरीत अछि) कुण्डलिनी-शक्तिक विशेषित होएबाक बाट रुद्ध अछि, कारण हुनक सन्मार्ग ब्रह्मनाड़ीकें दूनू दिशिसँ इडा-पिङ्गला दबने अछि, तें काहु विमन, विशिष्टमन आब काहु कतए जाए बसताह ? उत्तर बसताह से असदृश, अयाह मनोगोचर। जे मनोगोचर आगमिक तत्त्व सेसब उदास लगैत अछि, ओहिमे कोना हुनक ? ओ तीनि, काय-वाक्-चित्त, आ[2] हे तीनि, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल, भिन्नताक

१। सेन। टाइपा—वइ

सूचक थिक, एहन गए विश्वक परिच्छिन्न स्वभावक दृष्टिएँ अछि। विश्वक मायाजाल अनित्य वस्तु, से जनमल सभ चल गेल। काहु एहि आवागमनसँ विक्षुब्ध छथि। ई आवागमन कोना हुएत ? मुक्तिसँ। से मुक्ति-प्रतीक जिनपुर तें एहिमे अछि, केवल हृदयमें पैसए, चित्त विकास हो, तखने आवश्यक।

२ (६)

एवंकार दढ[1] वाखोड़ मोड़िअ।
विविह विआपक बान्धण तोड़िअ॥
काहु[2] विलसअ आसयमाता।
सहजनलिनीवन पइसि निवित्ता॥
जिम जिम करिणा करिणिएँ रिसअ।
तिम तिम तरुवरमअरन्द वरिसअ॥
छड़गइ सअल सहावे सूए।
भावाभाव वलाग न[3] हुए॥
दशबलरअण हरिअ दशदिसें।
[अ]विद्याकरिकुँ दम अछिलेसें॥

× × ×

एवंकार दढ़ खम्हा मोड़ल।
विविध विआपक बन्धन तोड़ल॥
काहु विलसए आसयमत्त (1)।
सहजनलिनीवन पैसि निवृत्त (1)॥
जिमि जिमि करिणा करिणीए रिसए।
तिमि तिमि तरुवर मअरन्द वरिसए॥
पइगति सकल स्वभावें सुद्ध।
भावाभाव वालाग[4] न छुद्ध (शुद्ध)॥
दशबलरतन हरल दशदिसे (से)।
अविद्याकरिकें दम (द) अछिलेसें (सें)॥

१। सेन—दढ २। सेन—काहु
३। वलाग, सेन : शास्त्री—वलाग न [?]
४। वाल—सेन : आर्य सं० सा० सी० P. 390 (मध्य)

'०र्' मन्त्ररूपी वा शक्ति-शिवरूपी चन्द्रसूर्यनाड़ीके द्वन्द्वमार्गे कोटिन जप (गर्दित क०) हृदयस्थ करता। यात्र विविध व्यापक बन्धनसमर्थे मोक्ष। आज काहु मय पीत्रि उन्मत्त वा सामरस्य-सुखानुभवसे विभोर छथि, ओहि सहजानन्द-सामरस्यरूप, शक्तिरङ्गसरोवर,कमलिनी वनमे विलास कर रहल छथि संसारसँ आइ निवृत्त छथि। जेना जेना चित्तरत्नेन्द्र शून्यस्वरूपिणी महा शक्तिकरिणीमे रिसिआ रिसिआ सटैत अछि, तेना तेना शिवत्वक आनन्द-मदधारा परिसेह अछि। देवासुरप्रभृति षड्गतिशील जीवचक्र स्वभावतः शुद्ध अछि, केवल मायाक कारणें अशुद्ध। आब हमरा मायाक स्वरूप स्पष्ट भए गेल अछि आ तँ माय अनायक समस्यासँ केशामो भरि स्पृष्ट वा क्षुब्ध नहि छी अविद्या तँ हमर दशबल'-रत्न (शिवत्वरूप)केँ हरण कए लेने छल अविद्यादिक कारणें ओ दशहु दिशामे छिड़िआ गेल छल। किन्तु आब हम ओहिपर विजय प्राप्त कएने छी। तोहरहुसँ एक अनुरोध अछि जे अविद्या-हथिनीकेँ सुलभ रीतिएँ, सात्त्विक भोगमय साधनसँ दमन करह। अविद्या-हथिनीसँ काज नहि चलतह, चित्त-बाजकेँ विद्याकरिणीक अन्तरङ्ग बनबह, सएह आवश्य।

३ (१०)

नगरबाहिरि रे डोम्बि तोहोरि कुडिआ।
छोइ छोइ जाह सो बाह्मणाडिआ॥
आसो डोम्बि तोए सम करिअ मो[1] साङ्গ।
निघिण काह कापालि जोइ लাঙ॥
एक सो पदुमा चौषट्ठी पाखुड़ी।
तहिँ चढ़ि नाचअ डोम्बी बापुड़ी॥
हा लो डोम्बि तो पुछमि[2] सद्भावें।
आइसलि जासि डोम्बि काहरि लाবেঁ॥
तान्ति विकणअ डोम्बि अवरना[3] चाङ्গेड़ा[4]।
तोहोर अन्तरे छाड़ि नड़पेड़ा[4]॥

५। इस पारिभाषिक पद—शा० क० पृ० ८२१ ('पद' द्रष्ट्य)।

१। चमोको) शासमो, सेन—म २। पुछीओ, सेन—अवर ना

३। सेन—चङ्गरा ४। सेन—नड़पेड़ा

तु लो डोम्बी हाँउ कपाली।
तोहोर अन्तरे मोए[5] बेलिलि[5] हाड़ेर मालী॥
सरबर भाञ्जअ डोम्बी खाअ मोजाए।
मारमि देोम्बि लेमि पराए॥

× × ×

नगर बाहर हे! डोम्बि! तोहर कुटिआ।
छुवि छुवि जाह से ब्राह्मणाडिआ॥
हे रे डोम्बि! तोहि सम करब हम साङ্গ।
निर्घृण काह कपाली योगी नङ্গ॥
एक से पदुमा चौंसठि पंखुड़ी।
ताहि चढ़ि नाचअ डोम्बि बापुड़ी॥
हे हे डोम्बि! तोहि पुछी सद्भावें।
आवह जाह डोम्बि! कहर गावें॥
तान्ति बेचह डोम्बि! आवरण (?) चङ्गेड़ा।
तोहर अन्तरे छाड़ी नटपेड़ा॥
तों हे डोम्बि! हम कपाली।
तोहर अन्तरे हम सहज हाड़क माली॥
सरबर भाञ्जि डोम्बि खाए मृणाल।
मारी डोम्बि लेमि पराल॥

हे डोम्बि! नगरसँ बाहर तोहर झोपड़ी छह, अथवा हे महाशक्ते! शरीरक स्थूल परिधिसँ बाहर, सूक्ष्म रूपमे अहाँक वास्तविक सत्ता अछि; कुण्डलिनीरूपमे अहाँकेँ ब्राह्मणादी छुवि छुवि जाइत अछि। हे महामुद्रे! हम अहाँक सङ्ग रतिलीन होएब शिवरूपमे, आइ काह अष्टपाश-विमुक्त छथि, स्वतः घृणा नहि, कापालिकक रूपमे अघोर छथि, नग्न छथि, विषयवासनासँ अनाहत छथि। एक ओ मूलाधारचक्रक पद्म, जकर चौंसठि दल, ताहिपर मानु कुण्डलिनीरूपमे महामुद्रा डोम्बिनी माया नाच करैत छथि। हे महामुद्रे! अहाँकेँ हम सद्भावें पुछैत छी—'अहाँ कोन नामसँ सहस्रारपर चढ़ैत जाइत

५। सेन—बलिलि

छी आ' ओतएसँ बहैत अतरैत छी ?" कोनो स्थूल सवाइक तत्त्व नहि अछि, चित्त मात्र साध्यम अछि, सएह आश्रय। हे डोमिनि ! हे महामुद्रे ! अहाँक काज अछि कोंकराहटि-पतनक एमे मूल्य लए मायाक तांति बेचब आ आवरणरूप पहेरा देबय। अहाँक निकट भेलासँ हम नटपेटा छोड़ि दी, जाहिसँ व्यवहारक लए मायामय विश्वमे नट-लीला करैत छलहुँ। अहाँ डोमिनि [अस्पृश्या, अन्त्यजगोत्रा] छी हम कापालिक छी, अहाँक समीप आए हम अस्थिमाला धारण कए लेब छी। प्राणरक्षित पञ्चक शरीरक अन्तःस्थकरूप सरोवरकेँ तोड़ि, आहिमे पैसि सुधातत्त्वसदृश ब्रह्मनाड़ीक भोग करैत छथि। आब हम कुण्डलिनीक (नाड़ीक मूलभूत व्यापक) सत्त्वकेँ अपनामे ग्रहण कए आत्मामे मिलाए लेब, सभक गुणशक्तिकेँ आत्मकेन्द्रित कए शिवत्वलाभ करब।

५ (९९)

नाड़िशक्ति दिढ़ धरिअ खाटे[1]।
अनहा डमरु बाजइ बीरनादे ॥
काहु कपाली योगी पइठ अचारे।
देहनगरी विहरइ एकाकारे ॥
आलि कालि पण्टा नेउर चरणे।
रवि शशी कुण्डल किअ आभरणे ॥
राग द्वेष[2] मोह लाइअ छार।
परम मोक्ष जएह मुत्तिहार[3] ॥
मारिअ शासु नणन्द घरे शाशो।
माअ मारिआ काहु भइल कपाली ॥

× × ×

नाड़िशक्ति दढ़ धरी खाटे।
अनहद डमरु बाजइ बीरनादे ॥
काहु कपाली योगी पइठ आचारे।
देहनगरी विहरइ एकाकारे ॥

१। चर्यापदमें। शाशो—सासु। नेउर—नूपुर। २। चर्यापदमें। शाशो—देर। नेउर—देर।
३। चर्यापदमें, नेउर। शाशो—मुक्ताहार।

आलि कालि पण्टा नेउर चरणे।
रवि-शशि-कुण्डल कएल आभरणे ॥
रागद्वेषमोह लेखिकें छार।
परम मोक्ष ज [अ]ए मुत्तिहार [मुक्ताहार] ॥
मारि सासु ननंद [ननदि] घरे घरालो।
माए मारि कान्हु भेल कपालो ॥

ब्रह्मनाड़ी आदि [षट्चक्रनिरूपणक प्रसङ्गमे कहल] नाड़ीसमूहक अन्तःस्थित समस्त शक्तिकेँ, कुण्डलिनी या प्राणशक्तिकेँ, चित्तक आधार बनाए, आहि-पर आरूढ़ि मनसा पड़ि रहल छी। एहि मनतक क्रममे अनाहत-ध्वनिरूप डमरूक निनाद 'संसू' जोरसँ सुनि रहल छी। कापालिक काहु योगी आब तेहन आचारक अनुसरण करैत छथि जाहिमे देहे देवालय थिक एहि आलयमे, देहनगरीमे, मानू ओ एकरूपमे, एक तानमे, समाधिस्थ भए सामरस्यसुखोपभोग करैत विहार कए रहल छथि। ओहि खापनाक क्रममे इड़ा-पिङ्गलागत पवनक सन-सन शब्द, ओहि नाड़ीयुगलमध्य ऊर्ध्वसंचारिणी कुण्डलिनीशक्तिक नूपुर-ध्वनि अछि, शरीरस्थ सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल आहि महतीशक्तिक तादात्म्य थिक एहि प्रकारक अनुभूतिक प्रलोभन काहु सांसारिक विषयवासनालमकेँ हाथ कए दास बनाए देल। आब जँ ओहिसभक अनुभवो होइत अछि तँ शमित, प्रशान्त, शीतल संवेदना मात्रक रूपमे, एहन सन जेना अपन समस्त ज्वालाकेँ काहि निःशक्तित भए ओ केवल शरीरमे (धरम जकाँ) लागल अछि। आब काहु बड़ बहुमूल्य हार, मुक्ताहार, लाभ कएने छथि, की थिक परमोक्षहार, मुक्तिहार। जीवात्मा (स्त्री)क सासु-ननदि जकाँ श्वास आ' ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-मुखसाधनसमकेँ तँ काहु दमित कए समाप्त कए देल जे सभक मूलभूता मलिन-सत्त्वप्रधाना मायहुकेँ, समस्त विषयवासनाक जननी मायहुकेँ आह समाप्त कए देल, एतक प्रपञ्चजालसँ अवसान भए ओहिमे अप्रभावित छथि (शुद्ध सत्त्वप्रधाना महामायामे लीन भए गेल छथि, स्वतः परम शिवरूप, सच्चिदानन्दरूप बनि गेल छथि)।

५ (९२)

करुणा विहाडि खेलहुँ नअबल।
सद्गुरुबोहेँ जितेल अबबल ॥

कीटत हुआ मादेसि रे ठाकुर
उभारि उदरें काहु रिअइ[1] जिनउर ॥
पहिलें तोड़िआ कड़िआ मारिउ[2] ।
गजवरें तोड़िआ पाञ्चजना घालिउ ॥
नगिएँ ठाकुरक परिनिविता
अवसर करिआ भवजल जिता ॥
भणइ काहु अम्हे[3] भाल दान देहुँ ।
चउपट्ठि कोटा गुणिआ लेहुँ ॥

× × ×

करुणा दीठी खेलाइ मयवल ।
सद्गुरुबोधें कोतल भयवल ॥
काहल द्वैत, मातु रे ! ठाकुर ।
उपकारि-उदेसें काहु निअर जिनपुर ॥
पहिले तोड़ि पत्तिका मारल ।
गजवरे तोड़ि पञ्चमम घालल ॥
मतिएँ (मन्दिरें) ठाकुरक परिनिवृत्त ।
अवसर करु भवजल जित (ल) ॥
भनइ काहु, हम भए दास दी ।
चौंसठि कोटा गुणि लइ ली ॥

आइ काहु करुणामय स्वाधिष्ठानचित्तकें समस्त जागतिक प्रपञ्चक सतरञ्जक पर प्रकाशानि, ओहि चरसमसे जागतिक अनुभवकें सहि रात्रि, आध्यात्मिक सम्पत्तसभकें उपविष्ट कए अपूर्व लोकोत्तर विलास कए रहल छथि, तेहिए जकाँ सद्गुरुदत्त ज्ञानसँ अपन आध्यात्मिक शाक्त शरीरस्थ सम्पत्तसभक द्वारा सांसारिक वासनासभकें जीति जगद्गुरु प्राप्त कए लेने छथि । आइ द्वैततरु छिन्न भए गेल, अद्वैत-भावना अङ्कुरित पुष्पित भेल । रे अविद्याप्रसूत चित्त ! तोँ आइ मातु भए गेलह, तोहर प्रकृति संग्राम । उपकारीक उद्देश्यें तकैत तकैत

१। पाठान्तर—निअर २। पाठान्तर—मराविइ। सेन—मराविइ
३। पाठान्तर। शास्त्री, सेन—अम्हे

काहुक ध्यान कएलाह, एहिपर जाइत छथि जे महान स्वर्ग (आनन्दमय लोकोत्तर जगत) निकटहिमे अछि । जन्मपक्ष सतरञ्जक जालपर कोना विजय प्राप्त करथि, तकरा सूचित करबाक हेतु काहु ओकर प्रक्रिया देखौल छथि । पहिले (आठो) 'यादा' कहल अर्थात् पृथ्वीआदि आठपाश केँ काटल । समाधिमय चित्तराज कोल तोड़ीकें हुकरा अन्य दाग (गन्ध आदि) वा ज्ञानेन्द्रिय विषय-समूहकें काटल । मन्त्री वा मन्त्रशास्त्रीय बुद्धि द्वारा जे अविद्याप्रसूत चित्तराज स्वयं मातु भए गेलाह, अचल भए गेलाह । आब ओहि वज्रमय निलहिकें ठाकुर मातु कए देल तखन जगद्गुरुलामक रूपे कोन ? ओ तँ अनायास सिद्ध भए गेल । काहु कहैत छथि—हे महामुद्रे ! चौंसठि दलक पद्म(चक्र) हम अहाँक सेवामे प्रस्तुत करने छी, जो अहाँक निवास-मन्दिर अछि, अतः हमर अनुदान सुनू ।

६ (१२)

निशरण तावी किअ अठकुमारी ।
निअ देह कमल हन मेहेरी[1] ।
तरिआ भवजलधि जिम करि माअ सुइना
मझ केली तरङ्ग म[2] सुनिआ ॥
पञ्च तथागत किअ केहु काल ।
बाहअ काअ कालिल[3] माआजाल ॥
गन्ध परस रस सद्दसीं लइसीं ।
निद्द निद्दुने सुइना जइसीं ॥
विअकवणहार सुणत माङ्गे[4] ।
ठलिल काहु महासुहसाङ्गे ॥

× × ×

निशरण तावी कुल अठकुमारी ।
निज देह कमल सुनमेहेरी (पहिल) ॥

१। पाठान्तर। शास्त्री—हयवज्रगुह्यमे हेरी। सेन—कमलाकुल मेहेरी।
२। पाठान्तर। शास्त्री—तरङ्ग ३। पाठान्तर शास्त्री—कालिल
४। पाठान्तर। शास्त्री—छन्दमम कें

सीर्ण भवजलधि जिमि वरि माया मपना ।

माक बेगी तरङ्ग हम भूनि ॥
पञ्चतथागतकृत कण्डारि ।
बाहए काय कपालिल भाअकाल ॥
गन्ध-परस-रस जइसन तइसन ।
निद-विहीने सपना अइसन ॥
चित्तकर्णधार शून्यता-मार्गें (साधि कर) ।
चलल कान्हु महासुख सङ्गे ॥

काय, वाक्, चित्त इनह तीन तँ साधनाक साधन अछि, एहि तीन शरणकें नौका मानि भाव-शिखिकें ऊपर खेबय लागहु, एहि नौकाहिक प्रसादात् समस्त अष्ट-कुमारी (आशा आदि वा चित्तक अष्टमूर्तिक सहचरी अष्टप्रकृति पञ्चमहाभूतकर्मेन्द्र-भगवान) कें, अपन देहरिमे कहला शून्यमे वा शिव शक्तिमे (अन्तरङ्ग परम शास्त्रमे) देखल, अथवा एहि तीन शरणकें अष्टशक्तिमे परिणत कए (साधनाक बलें अष्टशक्तिक अभिन्न काय, वाक्, चित्तकें बनाए), अपन देहकें शिवशक्तिमे लीन कए देल, एहन अनुभव होइत छल। तखन मायाकें सपना मानि संसार-सागरकें पार कएल। एहि विजला बुद्धक तरङ्गकें रोकि (मध्यस्थ सहज मार्गकें अपन प्राण कुण्डलिनीशक्तिसँ पूर्ण कए) विरोचन, अक्षोभ्यादि देवसमूहकें कण्डारि मानि हुनकहि लोकनिक आश्रय भएसँ काय नौकाकें खेबैत, योगसाधनामे लागल लागल काह मायाजालसँ बचीए भेलाह। गन्ध-स्पर्श-रसादि जे सुख-दुःख दिअए, हम इनह मानैत छी जे जाँकर सपा निद्रा-विहीन, जाग्रत-सुषुप्तक मध्यवर्ती दशा स्वप्नदशासँ अधिक नहि, अर्थात् अवास्तविक थिक, भ्रममात्र होइत अछि जे यथार्थ थिक। चित्तकें कर्णधार मानि (चित्तहिक बलें) काहपाद सामरस्य-सुख-द्वीप दिशि चलल छथि।

७ (१८)

तिहि सुअरुह मह आहिअ हेलें ।
हउँ सुतेलि महासुहलीलें ॥
कइसणि हाको डोम्बी तोहोरि भमरिआली ।
अन्ते कुलिणजण माँकें काबाली ॥

तँइ सो डोम्बी सअल विडालिअ ।
काअ णा[1] कारण ससहर टालिअ ॥
केओ केओ तोहोरे बिरुआ बोलइ ।
बिदुअन[2] लोअ तोरें कण्ठ न मेलइ ॥
काहे गाइ तु कामचण्डाली ।
डोम्बीत[3] आगलि नाहि छिणाली ॥

× × ×

तीनु भुवन मोहि बाधिअ हेलें ।
हम सुतल महासुखलीलें ॥
कइसनि हे मे डोम्बिनि ! तोहर भमरपन ।
अन्ते कुलीन जन माझे कपाली ॥
तोहें हे डोम्बिनि ! सकल विडारल ।
कार्य न कारण कण्डार टारल ॥
केओ केओ तोहरा बिरुआ बोलइ ।
निद्धन लोक तोर कण्ठ न मेलइ ॥
काहु गावइ, तोँ कामचण्डाली ।
डोम्बीसँ (तः) अगिली नाहि छिनारी ॥

तीनू लोककें हम तुच्छ बुझल, अवहेलना कएल, आब ओकर कोनो प्रयोजन नहि हमरापर, ओकर विडम्बना रुचि देल। आइ हम सामरस्यसुख-विलासक सङ्ग तुरीयावस्थाक अनुभव करैत समाधिस्थ छी। हे महासुहे वा शरीरधारिणी डोमिनि ! हे तोहर की भमरपन जे हमरा, कापालिककें, मध्य-स्थान दैत कुलीन (शरीरलीन) जनकें अन्तमे गोचर दैत छहुन्ह (कापालिक महाशक्तिक मध्यस्थ बिन्दुमे आत्माकें लीन कए दैत छथि, एहन आशय)। हें न कहल जाइत अछि जे तोँ प्रपञ्चिनी छह, तें तोँ सभकें बिलटा दैत छह, कार्य्य-कारण-सम्बन्धक अभावहुमे सहजें प्रभुतचित्तचन्द्रकें मुक्त करैत छह। केओ केओ तोरा बिरूपा (विकृत रूपा, बिना रूपक) कहैत छथुन्ह, बिदुअन

१। चर्यापा। शास्त्री—कण्ठ ॥ चर्यापा। शास्त्री—बिदुअन
२। चर्यापा। शास्त्री—डोम्बी ॥

तोरा कवटसँ नहि छोड़ैत छथून्ह (अथवा कपट नहि मैलैत छथून्ह)। काहु गवैत छथि—हे महामुद्रे ! तोँ कामचण्डाली, कुलकुण्डलिनी (शक्ति) या कामे अरी महाशक्ति छह। काहुक धारणा तँ इएह छन्हि जे एहि डोम्बिनिसँ, महा-मुद्रासँ, आगाँ कोनो छिनारि नहि (अर्थात् छिनारि छथि को, एहि अर्थमे जे सकल प्राणीक आत्मभूत शिवक सङ्ग रतिलीलाक हेतु आकुलि रहैत छथि)।

८ (१६)

भवनिर्व्वाणे पड़ह मादला।
मनपवणवेणि करण्डकशाला[1] ॥
जय जय दुन्दुहिनाद बहुलिआ।
काहु डोम्बीविवाहे चलिआ ॥
डोम्बी विवाहिआ अहारिल जाअ।
जउतुके किअ आगुतु[2] धाम ॥
अहणिसि सुरअपसङ्गे जाअ।
जोइणिजाले रअणि पोहाअ ॥
डोम्बीपर सङ्गे जो जोइ रत्तो।
खणहु न छाडअ सहज उन्मत्तो ॥

× × ×

भवनिर्व्वाणे पटह मादला।
मन-पवन दुइ करण्ड-कसाला ॥
जय जय दुन्दुभि शब्द उछलला।
काह्न डोम्बी विवाहए चलला ॥
डोम्बी विवाहि आहारल जम्म।
जउतुके कुल अनुत्तर धर्म ॥
अहर्निशि सुरत-प्रसङ्गे जाए।
योगिनि-जाले रजनी पोहाए ॥
डोम्बीकेर सङ्गे जे योगी रक्त।
खन्तु न छाड़ए सहज उन्मत्त ॥

१। सेन—करण्ड-कसाला २। सेन—आगुत्तु

भव-बन्धन आ मोक्ष दुनू पटहमादल वाद्ययन्त्रक काज कएलक आ मनप्राणपवन करण्ड आ कसाला वाद्ययन्त्रक। भव-बन्धनक डोल-मृदङ्ग पिटैत आ मन-प्राणक अनाहत-शब्द-ध्वनि प्रसरित करैत काह्न डोम्बिनि महा-मुद्राक सङ्ग सामरस्यक हेतु चलल छथि, भूमि पड़ैत जे शून्यगगन वहराकाशमे जय-जय तुमुलनाद भए रहल अछि। काह्न साधना-मार्गपर चढ़ैत चढ़ैत शिवत्व-लाभ कर महाशक्तिमे सदाक हेतु संलीन भए गेलाह, आब जन्मक बन्धन हटि गेल, जउतुकमे अनुत्तरत्व (परमपद) लाभ भेलन्हि, आब ओ मुक्त छथि, अहर्निशि सामरस्यसुखोपभोगमे डुबल छथि, शास्त्रकथित शून्यहृदया योगिनीक विलास विच्छिकिक साक्षात्कार करैत रात्रि बितबैत छथि। एहि डोम्बिनि— महामुद्रामे, चित्तिकपरिणामिनिशक्तिमे जे योगी रति लाइन छथि (एक बेरि), तनिका पुनः ओहि विमर्शक कामन्दकेँ छोड़ल नहि जाइत छन्हि, ओ सहज-सामरस्यानन्दमे विभोर रहैत छथि।

९ (२४)[1]

पूर्णचन्द्र उदयति यदा।
चित्तराजो विमलो भवति तदा ॥ १ ॥
मोहमलं छिन्नं गुरूपदेशेन।
विषयेन्द्रियं ज्ञानमुपेतं ॥ ध्रु० ॥
खसमरीतं यत् खसमं याति।
आत्मपुरुषं त्रिधातुषु वितनोतिच्छायां ॥ २ ॥
यथा उदिते सूर्ये रात्रिर्व्वपयाति।
(तथा) भवसमुद्रमोहरजो दूरीभवति ॥ ३ ॥
राजहंसो यथा जलं विविनयित।
भवं भुंक्ष्व [तथा] इति कथयति कृष्णपादः ॥ ४ ॥

× × ×

पूर्णचन्द्र उदए यब
चित्तराज विमल भए तबे

१। "This gill with its Sanskrit Commentary lost due to a lacuna in the Ms. is given below in Sanskrit retranslation from Tib. version appended in Roman Transliteration at the end of the work ..... ."

मोहमल छिन गुरुपदेशें ।
विषयेन्द्रिय गलनयुक्त ॥ ध्रु० ॥
समसम ज्ञे (से) सकाम जाए ।
आत्मवृक्ष विधातु (मे) पसारए छाया ॥
जेना उगने सूर्यक राति पलाए ।
(तेना) भवसमुद्र मोहधूलि दूर होए ॥
राजहंस जेना नीरकें क्षीरसें विभिनाए ।
भव भोगह (तेना) ई भनथि विमुन (काहु) पाए ॥

पंचशकलात्मक प्रबुद्ध चित्तचन्द्र या प्राणचन्द्र जखन उदित होइत अछि, तखन अकलंक अर पंचशोक अन्तरङ्ग भए जाइत अछि सहजानन्दस्थ शिवरूपमे, स्वतः सहज चित्तराज शुद्ध सत्, चित्, आनन्दमे परिणत भए जाइत अछि। गुरूपदेशसें मोहमल नष्ट भए जाय आ इन्द्रियसमक प्रेरणा आय शून्यमे अन्तर्लीन भए जाय, सभ ओहीमे लीनल रहए। निष्टङ्क शून्यस्थ बीज सेहो व्यापक अखंडक शून्यमे लोलि जाए। आत्मास्थ पृथक छाया जाय, बाकू, जिसकें व्याप्त कएने अछि जेना सूर्योदय भेलासें राति [अन्धकारयुक्त] पलाए, तहिना संसारक अगम्य सागरक मोहान्धकारमय निशा, चिद्घनप्रकाशसें दूर पड़ा जाए। राजहंस जेना नीरकें क्षीरसें फराक करैत अछि तहिना अचित्त्वकें चित्तसें फराक रूपमे देखैत संसारक [आ पुनः सामरस्यक] भाग करह, कृष्णपादक ई कथन।

१० (३९)

सुण वाहु तथता पहारी ।
मोहमण्डार लइ सकला आहारी ॥
चुभइ ण चेपइ अपरविभागा ।
सहजनिद्राहु काहिला लाहा ॥
पेकरण न पेअन भर निद गेला ।
सअल सुफल करि सुहे सुवेला ॥
स्वपणे भइ देखिल त्रिभुवण सुण ।
मोरिअ अवणागमण विहुन ॥

शाखि करिअ आलम्बरिपाए ।
पासि ण चाहइ[1] मोरि पाखिआचाए ॥
× × ×
सुन-वाट तथता प्रहारि ।
मोहमण्डार लए सकल (ई) आहारि ॥
सुतइ न देखइ स्वपरविभाग ।
सहज-निद्राहु काहु लाहा ॥
चेतन न चेअन भरि निद गेला ।
सकल सुफल करि सुहे सुवेला ॥
स्वपने मोहि देखल त्रिभुवन सुन ।
मोरि आवागमन विहीन ॥
शाखि करब आलम्बरपादे ।
पक्षे न देखइ मोर पक्षिआचार्ये ॥

शून्यमायाक प्रवाहकें शिवता-भावसें, विभावसें, प्रहार कए काहु समग्र मोहभण्डारकें लए कए खा गेलाह। आह काम्ह तुरीयानन्दमे विश्रान्त छथि, स्व-परक भेद देखितहिं नहि छथि। सामरस्यमे डूबल समाधिस्थ रहैत छथि, मायाक आवरणसें मुक्त [नग्न] रहैत छथि, आब चैतन्यक अवस्थामे छथि, कोनो वेदना नहि, शाद तुरीयमे ध्यानमग्न छथि। प्रतीत होइत छन्हि जे आइ रम साधना सुफल भेल आ सुखसें महाशान्तिमे डूबल सुतल छथि, स्वप्नहुमे हँ देखैत छथि तँ शून्यमये शून्यस्वरूप विश्व, विषयवासना स्वप्नहुमे नहि सतबैत छन्हि। आब आवागमन प्रक्रिया पशुकें छोड़ि देल, ओ निस्तब नहि रहल, थमि गेल, ओहि बन्धनसें विहीन भए गेल छथि। एहि अवस्थाकें फकरा बुझाओल जाए? केवल आलम्बरपादकें साक्षी मानल जाए, जे सुभैत छथि, अन्य पक्षिआचार्य हँ एहि मार्गक पक्षपाती नहिए प्रतीत होइत छथि।

११ (४०)

जो भवणीअर कालाजाला ।
आगम पोथी दुष्टामाला ॥

१। चाहैको। शाखी, पेन—राहथ

भण कइसें सहज बोलवा[1] जाअ ।
काअ वाक् चित्त जसु ण समाअ ॥
आले गुरु उपदेइ सीस ।
वाक्वयातीत काहिअ कीस ॥
जेत इ[2] बोली तेत वि टाल[3] ।
गुरु बोध ले सीसा काल ॥
भणइ काहु जिणरअण वि कइसा[4] ।
कालें बोध संबोहिअ जइसा ॥

× × ×

जे मनगोचर आका-जाला (इन्द्रजाला) ।
आगम-पोथी इन्द्रमाला ॥
मण कइसे सहज बोलण जाए ।
काय वाक् चित्त जसु ण समाए ॥
आले गुरु उपदेइ सीस (शिष्य) ।
वाक्वयातीत कहण काहि ॥
जइसे इ बोली तसे टाल मटोल ।
गुरु बोध ले शिष्य वहिर ॥
मनइ कान्हु जिणरतने कइसन ।
वहिर बोध संबोधित जइसन ॥

जे किछु मनोगोचर लक्षलक्ष अछि, सभ मायाक इन्द्रजाल मात्र थिक, असत् थिक, तें आगमशास्त्रक सिद्धान्तमन, देवी देवतात्मक विग्रहसभ, इन्द्रदेवीक रत्नमाला आदि सभ इन्द्रजाले थिक (चित्त-शोधन विकासक साधन मात्र थिक, अन्तिम लक्ष्य नहि) सहज आनन्दकें शब्द द्वारा व्यक्त कोना करल जाय ? कारण, ओहिमे तें शरीरक, वाक् तत्त्वक या चित्तक प्रवेश नहि भए सकैत अछि [अवाक् मनसगोचर आ परम तत्त्व शिव-शक्ति तत्त्व थिक] । ज्यों

१। चर्यापदो । शास्त्री—बोल्ल आ २। चर्यापदो । शास्त्री, सेन—जे सइ
३। चर्यापदो । शास्त्री—ते ॥ विडाल
४। चर्यापदो । शास्त्री—थिकपइसा

कोनो गुरु शिष्यकें उपदेश द्वारा हृदयङ्गम करबाक प्रयास करैत छथि, वाक् मात्र्यसमें उनर, अतीत परम तत्त्व कोना कहल जाय ? जे किछु कहल जाइत अछि से सभ इन्द्रजालक समान्यानक कलमे दालमटोल करब मात्र थिक, उपयुक्त उत्तर अनुभवमात्रैकगम्य थिक । गुरु जखन ओहि परम तत्त्वक वास्तविक परिचय देत छथि तखन हुनका मुँह बन्द पड़ैत छन्हि (उत्तरमे 'नेति नेति' कहइ पड़ैत छन्हि, परिणामतः चुप), शिष्य जँ सम् शिष्य रहैत छथि तें कथित इन्द्रजालकें अनुभवी कए केवल तारक अनुभवमे हुनि आहत छथि । कान्हक धारणा तें हुनू छैन्हि जे जो स्वरूपतः (परमसुखक अवस्था) कहल थिक से कहब तहिना संभव छा' प्रमाणशाली जेका सङ्केतमात्र द्वारा, धीवक द्वारा, बहिर कें बुझाओल जाय ।

१२ (४२)

चित्त सहजे गुण संपुन्ना ।
कान्हविओएँ मा होहि विसन्ना ॥
मण कइसे काहु काहि ।
करइ अनुदिनें[1] वैलोए पमाइ ॥
मूढा दिठ नाठ देखि कअर ।
भाग तरङ्ग कि सोषइ सायर ॥
मूढा अच्छन्ते लोअ न पेखइ ।
दूध माझें लइ अच्छन्ते न देखइ ॥
भव जाइ ण आवइ पथु कोइ ।
अइस[2] भावे विलसइ काहिल लोइ ॥

× × ×

चित्त सहजे गुण सम्पूर्णा ।
कान्ह वियोगें न हो विपन्ना ॥
मन कइसे कान्हु काहि ।
करइ अनुदिन, त्रैलोकमे प्रमाणि ॥

१। चर्यापदो । शास्त्री—अनुदिन । २। चर्यापदो । शास्त्री, सेन—जइअ ।

मूढ़ (!) दृष्ट नष्ट देखि कातर।
भरम तरङ्ग की सोखइ सागर ?
मूढ़ अद्वैत लोक न देखइ।
दूध माझे नेनु अद्वैत न देखइ॥
भव आइ न आवइ (न) एत काइ।
अइसन भावें बिलइइ कालिल थोरि॥

आप काइ सहजावस्थामे शून्यस्वरूपिणी महाशक्तिमे डुबल छथि, पुनः बनि गेल छथि मुक्त छथि, चित्तक विषयी व्यापारक इच्छाँ मरिए गेल छथि (प्राण रहितहुँ जीवन्मुक्त छथि), आप काइ व्यक्तिरूपमे (विषयासक्तरूपमे) नहि भेटताइ, हुनक वियोग अनुभूत होइत किन्तु विषाद नहि कर, ई चित्तक चंचल छी जे काइ नहि छथि, काइ छथि (हँ, जीवन्मुक्त छथि) आ तँ अनुचित त्रैलोक्यक प्रमाता शिवरूप बनि चिद्रूपमे स्फुरित होइत छथि, सफल होइत छथि, मूढ़ व्यक्ति सकल दृष्ट वस्तुकेँ नष्ट होइत देखि कातर भय जाइत अछि, ई नहि बुझैत अछि जे एक तरङ्ग भरम मेलासँ को सागर सुखा जाएत ? मूढ़, अद्वैत लोक (सूक्ष्म लोक) आकरा देखैत नहि अछि, दूधमे मक्खन अद्वैते आकरा देखैत नहि अछि (अर्थात् समस्त पदार्थक सारभूत शक्तिकेँ, आकर निकट रहितहुँ, आकर अस्तित्व रहितहुँ, निरखैत नहि अछि)। भवसँ केओ आइत नहि अछि आ' न केओ एतय अबैत अछि (केवल मायाक कारणेँ जन्म-मृत्युक सीमाबोध होइत अछि), एहन भावसँ काइयाला सामरस्य-सुख-विलास करैत छथि (आ आइ निजा परमा सत्तासँ परिचित छथि आ' आहि सत्ताक आभास मायाकेँ मानैत छथि, तेँ जन्म-मृत्यु वस्तु निरर्थक बुझि पड़ैत छन्हि, आत्माक कविताशिल्प रहयाक कारणेँ आकर अपना-जेबाक प्रयत्न उठाएब अनुचित)।

(३ (४५)

भण तरु पाञ्च इन्दि तसु साहा।
आसा बहल पात फलबाहा॥
परगुरुवचणकुठारें छिजअ।
काइ भणइ तरु पुण न उहअ॥

बाढ़इ सो तरु सुभासुभ पाणी।
छेवइ बिद्धजन गुरु परिमाणी॥
जो तरु छेव भेवइ न जाणइ।
सहि पड़िएँ रे मूढ़ ता भव भमइ॥
सुण तरुवर गगण कुठार।
छेवइ जो तरु मूल न डार[1]॥

× × ×

मन तरु पाँच इन्द्रिय तसु साखा।
आसा बहल पात फलबाहा (क)॥
परगुरुवचनकुठारें छेवइ।
कान्ह भणइ तरु पुणि नहि उपजए॥
बाढ़इ से तरु सुभासुभ पाणी।
छेवइ बिद्धजन गुरु - परमाणी॥
जे तरु छेव (ए), भेदो न जानइ।
सहि पड़ए रे मूढ़ ता' भव भमइ॥
सुन तरुवर गगन कुठार।
छेवइ से तरु मूल न डार (रि)॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मनरूपी वृक्षक पाँच डारि थिक, ओहि शाखासभमे आशाक पातसभ लटकल रहैत अछि जे सभ फलबाहक मानल जाइत अछि। माहेँ (मोहक कारणेँ) लोक शब्दस्पर्शादिगत सुखानुभवक प्राप्तिमे आशाकेँ लगबैत रहैत अछि, सदिखन आशा करैत अछि जे अमुक फल भेटत एवमादि। आशामे चुरिआएल रहि लोक सत्यसँ दूर भए जाइत अछि, तेँ परम-सत्यक अनुसन्धानक हेतु ओहि आशाक मूल मनोवृत्तिकेँ काटह, श्रेष्ठ गुरु-वचन-कुठारसँ से काटि सकबह। आ गाछ शुभाशुभ (-उत्पादक पुण्य-पाप)क जलसिञ्चनसँ बढ़ैत अछि, शुभाशुभकर्मसँ चित्तक विषय वासना बढ़ैत जाइत अछि, गुरुप्रमाणसँ विद्वज्जन वहि वासनातुरक्त चित्तवृत्तिकेँ कटैत छथि।

१। मनोकी) रसस्मी, वेन—डार।

जे व्यक्ति एहि वृक्षक छेद-भेद करए नहि जनैत छथि से ता' धरि जगजालमे विश्वास करैत रहि जाइत छथि। सुन्दरी अविद्यारूप, मायारूप आदि शून्य-गहकें विद्यारूप (विमर्शरूप) गगन-कुठारसँ काटह, शून्य-मायाक आवरण-विक्षेपरूप वृक्षकें महामायाक शून्याहन्ताविनर्श कुठारसँ काटह, जड़िसँ काटह, केवल शाखासभकें नहि काटह।

विरुपापाद

१ (३)

एक से शुण्डिनि[1] दुइ घरे साम्बअ।
चीअण चाकलअ बारुणी बान्धअ॥
सहजे थिर करि बारुणी साम्ब।
जें अजरामर होइ दिढ़ काम्ब॥
दशमि दुआरत चिह्न देखिआ[2]।
आइल गराहक अपणे बहिआ॥
चउशठि घड़िये देल पसारा।
पइठेल गराहक नाहि निसारा॥
एक से चड़ली[3] सरुइ पाल।
भणन्ति विरुआ थिर करि चाल॥

× × ×

एक से शुण्डिनी दुइ घर मिलअए।
चिकणा चाकलें बारुणी बान्धए॥
सहजे थिर करि बारुणी मिलअइ।
जें अजरामर होइ दीढ़ कान्ह (कम्ब)॥
दशमि दुआरिएँ चिह्न देखिकें।
आएल गाहक अपणे बहिकें॥

१। सेन—शुण्डिनिए। २। सेन—देखइअ। ३। चड़ली, सेन—पइठ ली।

चौंसठि घड़िएँ देल पसार।
पइसल गाहक नाहि निसार॥
एक से चड़ी, सूक्ष्म नाल।
भणहि विरुआ थिर करि चाल (ह)॥

एक को शुण्डिनी, शौण्डीरशक्ति या कुण्डलिनी-शक्ति दुइ घरकें या सूर्य-चन्द्र नाड़ी कें मिलबैत अछि, विवाह द्वारा या सुषुम्नामे करि; चिकन वस्त्र-अञ्चलनाड़ी (सुषुम्नाम्या) या गुरूपदेशसँ बारुणी (सहस्रारस्थ मधु) कें बन्हैत अछि। सहजभाव या सामरस्य-भावकें स्थिर कए आदि चित्तकें परमशिवलीन करह। किएक? ओहिसँ तोँ अजर-अमर भए जएबह, दृढ़स्कन्ध भए जएबह। हे कान्हक कान्हम! दशम दुआरिएँ [वैरोचनद्वारसँ (सं० टी०) या दशम इन्द्रिय उपस्थचिह्नद्वारें][1] महामाया-सुख-चिह्न देखि को आइल (कामसत्त्व) बाहर आइल आ' अपनाकें दिवाराम प्रसरित रखलक, ओहि सामरस्य सुख (या स्त्री-चिह्न)मे प्रविष्ट भए पुनः निःसृत नहि भेल। ओ जे पूर्वोक्त तत्त्वज्ञानकें पतित केनिहारि नाड़ी, तकर नाल सूक्ष्म (ज्ञानमय)। विरुपापाद कहथि—ओहि चित्त या प्राणकें स्थिरत्व रूपमे, प्रशान्तरूपमे चलाबह। (एहिठाम मैथुनक प्रतीक अछि)।

महीधरपाद

१ (१६)

तिनिएँ पाएँ सागेलि रे अणह कलश अण गाजइ।
ता सुनि मार भयङ्कर रे विसअमरइल सअल भाजइ॥
मावेल चीअणन्दा बाअइ।
निरन्तर गअणन्त तुरें बोलइ॥
पाप पुण्ण वेणि तोड़िअ सिअल मोड़िअ अम्भाठाणा।
गअणटाकलि लागि रे चित्त पइठ निवाणा॥

१। 'विद्धसाहिअ' (पृ० २३१ में मुद्रित तथा शुक्रवैरोचनक उल्लेख, दोहर, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय (५+५) के गणनामे दशम अछि 'उपस्थ'।

महारसपाने मातेल रे तिहुअन सएल कएलो।
पञ्चविसअनायक[1] रे विषएल[2] कोवि न देखो[3]॥
खरविकिरणसन्तापें रे गअणाङ्गण गइ पइठा।
भणइ कहिंता मइ एहु सुकन्ते किम्पि न दिठा॥

× × ×

हीनिएँ पाटें लागल रे। अनहद-कर्यंग घन गर्जइ।
हे सुनि भार भयङ्कर रे। विषय-मण्डल सकल भञ्जइ॥

मातल चित्त-गजेन्द्रा धावइ।
निरन्तर गगनान्त तुरें धोरइ।

पाप पुण्य दुइ तोड़ि सांकड़ मोड़ि खम्भायला (ख्याना)।
गअन अनहद काणि रे। चित्त पइस (स) निर्वाणा॥
महारसपाने मातल रे। त्रिभुवन सकल उपेखि।
पञ्चविषअनायक रे। विषएल कानु ने देखि॥
खर रवि-किरण-सन्तापें रे। गगनाङ्गन गइ (आ) पैठा।
भणइ कहिंता मोहि हुलीते किमपि (किछु) न दिठा॥

काय-वाक्-चित्त एहि तीनू पट्टमें लागल अनाहत घनघोर गर्जन करैत अछि, से सुनि भयङ्कर विषय-वासनाचिरूप नार (कान) टूटि जाइत अछि महोद्यपादक चित्त-गजेन्द्र ज्ञानासवप्रमत्त भए दौड़ैत अछि, उपर उठैत अछि, सहस्रारस्थ शून्य गगनकें सकल विकल्परूप चोकड़क सङ्ग घुमैत (या विकल्प घेरैत)[1] अछि अर्थात् शून्यगगनरूप जातिमें सकल विकल्पकें घेरैत अछि। पाप-पुण्य दुनू सांकड़कें तोड़ि, अविद्यासंस्कारकें मोड़ि (गमोड़ि) शून्य-गगनक अनाहतध्वनि (टाकलि[2])मे लीन भए निश्चिन्त सुखिमे, सामरस्य-समाधिमे, पैसि गेल। ओहि समाधिक सुखकें उत्पन्न पञ्चविषय (शब्दस्पर्शादिक अनुभव)क विजेता चित्त सकल त्रिभुवनक (भोग्य) उपेक्षा करैत अछि आ' आन ओकरा

१। सेव—एह विषयो नायक २। चर्यागीतो—विषय ३। चर्यागीतो। शास्त्रो—देखि

४। तुलनीय आसामीक 'टकलि' शब्द 'a clicking noise'—चर्यागीतो (जा० हि०) शब्दस्य

हेतु विषएलाक, प्रतिकूलताक, कोनो प्रश्ने नहि अछि। सभकें अनुकूले देखैत अछि। आब आ' चित्त कुरङ्गिनी योगक द्वारा नामरूपक प्रखर ज्ञानरवि-किरणक आलोक पाबि शून्य गगनाङ्गनमे जा' पैसल। महोदर कहैत छथि, आन ओहि शून्यमे, चिन्मयीमे, हुलसि हम किछु नहि देखैत छी।

मादेपाद

१ (३५.)

एत काल हाँउ अच्छिलोँ सुमोहें।
एबें मइ सुमिल सद्गुरुबोहें॥
एबें चित्तराअ मोकु[1] दाठा।
गअणसमुद्दे ठलिआ पइठा॥
देखअि दह दिह सब्बहि शून्य।
चित्त विहूणे पाप न पुन्न॥
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ।
मइ अहारिल गअणत पसिआ॥
भादे मएइ अभागे लइआ[2]।
चित्तराअ मइ अहार कएला॥

× × ×

एत काल हम छलौं सुमोहें।
अबे हम सुफल सद्गुरुबोधें॥
अबे चित्तराज मोर भट [?]।
गगन-समुद्रे हरि [आ] पैस [?]॥
देखो हम दिश सबहि शून्य।
चित्त-विहीने पाप न पुण्य॥
बजिल देल मोहे लक्ख भनि।
मोरे आहारल गगने पसि॥
भादे मएइ अभागे लैला।
चित्तराज मोहि आहार कएला॥

१। चर्यागीतो। शास्त्रो, सेव—कहुँ २। चर्यागीतो। शास्त्रो, सेव—लइआ

एतेक काल हम मोहक सङ्ग छलहुँ, आब हमरा सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ बुझबामे आबि गेल। आब हमर कुचिन्ह नष्ट भए गेल, शून्यस्थानमे दृढ़ कए चल गेल, पैसि गेल। आब सभ दिशि शून्ये शून्य प्रतीत होइत अछि। आब चिन्तक व्यापार रुकि गेल, वासना नष्ट भए गेल, स्वयं पाप-पुण्यक प्रश्ने नहि अछि। यक्षकुल या कौल सम्प्रदाय हमरा स्वयं बुझाए देलक, जिनकर्मनकेँ छोड़ि हम सहस्रारस्थ शून्यमे पैसि अमृत आहार (भोग) कएल। आदेपाद कहैत छथि—आब हम अविनाश परमाणुकेँ कान्तमान कए लेने छी, आब हम चित्तराजहिकेँ आत्मसात कए लेने छी।

धामपाद

१ (७७)

कमल कुलिश मांझेँ भइअ बिअली।
सअतालीसेँ जइसन[1] चण्डाली॥
दाह डोम्बीएरे लागेलि आगि[एँ][2]।
ममहर लइ लिअइँ पाणी॥
न उ खरजाला धूम[3] न दिशइ।
मेरुशिखर लइ गअण पइसइ॥
दाढ़इ हरि हर बाह्म भङ्गा।
फीटा हइ नवगुण शासन पङ्गा॥
भणइ धाम कुल लेहु रे जोगी।
पञ्च नालेँ उठे गेल पाणी॥

× × ×

कमल कुलिश मांझे भए बिअली।
सअतालीसेँ (प)जइसन चण्डाली॥

---

१. [illegible] २. चमीको। डोम्बी, मेन—काशि
३. [illegible]। खरजी—धूम

डाहु डोम्बीएरे लागेलि आगि (एँ)।
ममहर लइ (ए) सीँचइ पानी॥
न ओ खरजाला धूम न देख (ए)इ।
मेरुशिखर लइ (ए) गगन पइसइ॥
दाढ़इ हरि-हर बाह्म (ब्रह्म) भङ्गा।
फाटल हइ नवगुण शासन पङ्गा॥
भणइ धाम कुल लेहु रे जोगी (गि)।
पञ्चनालेँ उठि गेल पानी (गि)॥

कमल कुलिशसँ तन्मध्यमे संयुक्त भेल अर्थात् शरीरस्था शक्ति शिवक मध्यबिन्दुमे (नाहि परमतत्त्वक सङ्ग) संयुक्त भेलाह (कमल योनिक प्रतीक आ' कुलिश लिङ्गक प्रतीक, योनि लिङ्गक मध्य भागमे संयुक्त भेल, किन्तु योनि-लिङ्ग कुण्डलिनी-स्वयम्भूलिङ्ग अर्थात् शक्तिशिवक स्थूल सङ्केत मात्र अछि) एहि (कुण्डलिनी-) योग द्वारा षट्चक्रीक, अर्थात् कुण्डलिनीशक्तिक तेजोमय शरीर जागन भए गेल। हुनक निवास, अन्तःस्थ अङ्गुष्ठप्रमाण मात्र पाञ्चभौतिक शरीर, आदि (कुण्डलिनीक) तेजसँ विनष्ट भए गेल वासनादिक दृष्टियेँ। ओकर प्रखर ज्वाला शान्त कोना भेल ? शरीरस्थ चन्द्रमण्डलक शीतल अमृतसँ आब ओ ज्वाला प्रखर नहि रहल, काजिम विकारक लेश धूमो नहि नयनगोचर रहल'- मेरुशिखरक आश्रित भएकेँ ओ प्राणशक्ति शून्यगगनमे प्रविष्ट भए गेलाह (आ' पुनः गगनस्वरूप महाशक्तिस्वरूप धारण कए लेलाहि)। आब तँ ओहि शक्तिक तेजसँ हरि हर ब्रह्मा, सम विमहत्तम देवतागण (या मूलकुण्डलिनीनाड़ी), दग्ध भए गेल छथि [भेदभाव जाइत रहल, एक मात्र तत्त्व बँचि गेल परमशिव (शिव-शक्ति, परस्पराश्लिष्ट आ' परस्पराभिन्न)] जड़पदार्थरूप नवगुणक एवं इन्द्रियशासनक पङ्ग फाटि गेल। धाम कहैत छथि—हे योगिन ! स्फुट (रूपमे) जानि लगह, उक्त पाँचो तत्त्व या व्यक्ति, हरिहरब्रह्मा (या मूलकुण्डलिनीनाड़ी), पवन आ' इन्द्रिय पाँच नाल (नहरि, द्वारा)क काज कएलक, जकर सहायतासँ अद्वैत शीतल-भावना-जल, सामरस्यक शीतल आहार दैत, प्रवाहित भेल। ई सभ हरिहरादि तत्त्व प्रारम्भमे सहायक भेल, द्वारा भेल किन्तु परिणामे शक्ति संयुत शिवतत्त्वक आ' पुनः तद्रूपत्व-अभेदक या सामरस्यक अनुभव शीतल आनन्द देलक। एहि अभिप्राय।

वीणापाद

१ (१७)

सुज लाइ सखि लागेलि कान्ती ।
अणहा दायडी एकि[1] किअल अवधूती ॥
बाजइ अलो सखि हेरुअवीणा ।
सुनतान्तिधनि विलसइ रुणा ॥
आलि कालि वेणि सारि सुणिआ ।
गअवर समरस सन्धि गुणिआ ॥
जबें करहा करहकलें[2] चापिअ ।
वतिश सान्तिधनि अअल पिआपिअ ॥
माचन्ति वाजिल गान्ति देवी ।
सुद्धनाटक[3] विसमा होइ ॥

× × ×

सूर्य लोका वाजि उगलि तन्ती ।
अनहत दण्डो एकीकृत अवधूती ॥
बाजइ अरे ! सखि ! हेरुकवीणा ।
सुन-तन्तिध्वनि [अनि]विलसइ रुणा ॥
आलि कालि दुइ सा रि सुणि ।
गअवर समरस सन्धि गुणि ॥
जबे करभा करभकलें[2] चापिअ ।
वतिस सान्ति-ध्वनि सकल विआपिअ ॥
गाचेंस वजिल गवेंस देवी ।
बुद्ध - नाटक विश्राम होइ ॥

सूर्यमण्डलक आभासरूप लौका (तुम्बा) हमर वीणा (अनहत-मुखमय ज्ञानमयसंगीतक अभिव्यञ्जक नाड़ी-चक्रक चन्द्राभासरूप तन्त्रीमे प्रलग अछि ।

१ । सेन—च 'क २ । सेन—हुपेक।
३ । चर्यागी । शास्त्री, सेन—करहकलें
४ । चर्यागी । शास्त्री—बुद्ध नाटक

अनाहत-वीणादण्डमे समस्त वासनाकें सुषुम्नाद्वारा लीन (लय) कए देल । आब हे सखि ! महासुखे ! हेरुकक या शिवक वीणाध्वनि रहल अछि, आब हम, वीणाधारी वीणापाद, शिवत्व प्राप्त कएल आ' हमर आमरस्वनय संगीतकें गुञ्जित करैत हे दह-चक्र नादहीन अछि । शून्य-तन्त्रीध्वनि तनु-मनु शब्द-विलास, वाक्-विलास, करैत अछि । आलि कालि, स्वरव्यञ्जन वर्णमे सा रि ध्वनि सुनि, हमर चित्त-गजेन्द्र सामरस्यात्मिक अनुभव कएल तत्पश्चात जखन आ गजवर सकल विषयरूप अन्य गजशिशुसभकें करभध्वंसक (विषय-गज-शिशुध्वंसक) ज्ञानप्रकाशसँ चापि देल, दमित कए देल, तखन समस्त धर्मसमूह नाड़ीरूप तन्त्रीमे नाद-ध्वनि व्याप्त भए गेल । आब बर्त्ता, पुस्तिकाधारी शिवत्व साधक नाचि रहल छथि, हुनक अभिन्ना शक्ति गाबि रहल छथि (सामरस्यभाव व्यञ्जक ध्वनि व्यक्त कए रहल छथि) तथा बुद्धनाटक या प्रबुद्ध शिवरूप साधकक ज्ञानमयी लीला विश्रान्त भए रहल अछि ।

चाटिलपाद

१ (५)

भवणइ गहण गम्भीर बेगें वाही ।
दुआन्ते चिखिल मज्झे[1] न थाही ॥
धामार्थे चाटिल साङ्कम गढ़इ ।
पारगामि लोअ निभर तरइ ॥
फाड़िअ मोहतरु पाटि जोड़िअ ।
अदअ दिढ़ टाङ्गी निबाणे कोहि [? कि ज्ञेअ[2] ॥
साङ्कमत चढ़िले दाहिण बाम मा होही ।
निअड़ि बोहि दूर मा जाही ॥
जइ तुम्हे लोअ हे होइब पारगामी ।
पुच्छतु चाटिल अनुत्तरसामी ॥

× × ×

भवनदी गहन गम्भीर बेगें वाही ।
दुलु अन्ते [तीर] चिखल माझे न थाही ॥

१ । चर्यागी । शास्त्री, सेन — माझें
२ । चर्यागी । शास्त्री—कोहिअ ; सेन—कोहिअ

धर्मार्थें चाटिल बान्ह (पूल) गहइ ।
पारगामी लोक निभैर तरइ ॥
काहि मोहतरु पाट बोहि ।
अद्वय दृढ़ टेकारी निर्वाण कोहि ॥
बान्ह (पूल) चढ़ि दहिन बाम न होअइ ।
निअर बोधि दूर न जाइ ॥
दुचि लोहें लोक हे ! होएबइ पारगामी ।
पुछइ चाटिल अनुत्तर साधी [स्वामी] ॥

जगत् रूप नदी अथाह गम्भीर वेगसँ बहैत अछि, एकर दूनू तट, धर्म-अर्थ, पिछड़ अछि जाहिसँ एहि नदीमे उतरबे कठिन। मध्यमे जाइत जाइत सँ एहन विकट परिस्थिति आबि जाइत अछि जे यह पाएब कठिन, कारण, विरलक मध्यबिन्दु छथि रहस्यमय विद्रूप। दूनू तटक, धर्म-अर्थक, समन्वयक हेतु चाटिलपाद एक पूल गढ़ैत छथि, ओ पूल थिक कौल सम्प्रदाय; एहि पूलपर चढ़ि पारगामी लोकसभ निर्भर भए जगत-नदीकेँ पार कए सकैत अछि। मोहतरुकेँ उपाड़ि, क्रोधि भवकेँ उदात्त शक्ति-अनुरागसँ काम्यलाभ कए पट्ट (पीठस्थान) मे जोड़ि मिलाए लगइ। अद्वय (शिवशक्ति-परम्पराश्रित परम अद्वितीय तत्त्व) रूप टेकारीसँ मुक्तितरुक मूल कोड़ि निकालइ, जाहिसँ आन्तरिक रहस्य ओकर बोधगम्य भए सकइ। कौलमार्गरूप पूलपर चढ़ि, दक्षिण-वाम उपचारक फेरिमे नहि पड़इ, निकटहिमे चित्त बोध प्राप्त होएबइ, आ छूटि नहि जाइ, अधिक दूर नहि चल जएबइ। हे अंतुरजन ! जँ सँ सभ पारगामी होअए चाहैत छथि तँ अनुत्तर स्वामी (शिवतुल्य ईश) चाटिलपादकेँ पूछइ।

कम्बलाम्बरपाद

१ (८)

सोने भरिली करुणा नावी ।
रूपा थोइ नाहिक[1] ठाँवी ॥

१। सेन—नहि के

बाहतु कामलि गअण उबेसेँ ।
गेला[2] जाम बाहुड़इ[3] कइसेँ ॥
सुणिअ उवाड़ी मेलिलि काछि ।
बाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि ॥
माअत चइदिखे चउदिस[4] चाहअ ।
केउ अछ नाहि के कि[5] बाहअके पारअ ॥
वाम दाहिण चारी मिलि मिलि माआ ।
वाटत मिलिल महासुहसाआ ॥

× × ×

सोने भरली करुणा नाव ।
रूपा चापए नाहक [नहि अछि] ठाम ॥
खेवइ कम्बल [कामालि] गगन-उबेसेँ ।
गेल जाम बहुरइ कइसेँ ॥
खुट्टी उपाड़ि लोअक डोरी ।
खेवइ कम्बल [कामालि] सद्गुरु पूछि ॥
माझि [वा मार्ग][6] [पर] चढ़ने चहुदिस लाअए
कहआरि नाहि के की खेवा कए पारए ॥
वाम-दाहिन चापि मिलि मिलि माझि [मार्ग] ।
वाटे मिलल महासुख सङ्ग ॥

करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका हमर शून्य-स्वरूपसँ (स्वर्णसदृश चकमक शून्यताविनर्मसँ) उज्ज्वल अछि, सरल अछि, ओहिमे रूपसंवेदना वा रूप-धातु रखबाक स्थान नहि, अवकाश नहि, अथवा नाहक ओहिपर रूप-वेदनादिक स्थापन। हे कम्बल ! वा हे कामालि ! शून्यस्वरूपविलोक प्राप्तिक हेतु करुणा-भिन्न-नौकाकेँ लेबि चलइ, ई विश्वास राखइ जे एहि पारावारसँ जे जीवन थाति जएबइ से कखनहि पुनः नहि आबि सकैत छइ, निश्चिन्त नौ मुक्त भए जएबइ।

१। चर्यागीति। शास्त्री, सेन—नेही २। चर्यागीति। शास्त्री—बहु बइ। सेन—बहुरइ
४। चर्यागीति। शास्त्री—चउ दिख ५। चर्यागीति। शास्त्री, सेन—कै कि
६। 'माझ'अर्थ मार्ग डॉ० बी० के० 'माझि' (नावक मार्गविशेष) अधिक समीचीन

ई चित्त नौका आदि आभास-दोषमे वाल्हल छलद से दोष-खुट्टी आश उपदि गेलह, आदि अविद्याक दोषमें वाल्हल छलद से आश दोष भए गेलह, लखन हे कन्यह ! [कानाडि !] मोरा चित्त-नौका-वाहनमे कठिनता किएक होएतह ? सद्गुरुकें पूछि जेहि चलह । सामान्यतया लोक यहि नौकाक माझिपर [वा सागर] यहि जीव भए वाल्हल आश्रय नकेल रहैत अछि । कहआरि गुरु-उपदेश, वैधी-कृपा] यहि रहलासें के कोना पार कए सकैत अछि ? तें गुरुक आश्रयमे, गुरु-देवताक निर्देशकृपासें चित्त-नौकाकें जीवन-नदीमे वा भाव-पाथमे आगां बढ़यह [चित्तकें विकसित कए चिदिरूपमे परिणत करह] । एहि स्वनिर्दिष्ट शङ्का विचारक क्रममे कन्यलाम्बरपाद स्वयं कहैत छथि—एक विषय लक्षकें ध्यानमे राखि हम आगां बढ़लहुं, वामदक्षिण मार्गमनकें दबाए अपन कौलसाधनाक अनुसरण कए नौका-माझिक वा मार्गक अवलम्बन कएल, एहि तरहें कतायास पारहिमे महासुख [प्रज्ञा-शक्ति वा सामरस्य-भाव] प्राप्त भए गेल ।

देण्ढणपाद

१ (३३)

टालत मोर घर नाहि पड़वेशी[1] ।
हाड़ीत भात नाहि नित्ति आवेशी ॥
बेङ्गस साप[2] बहुहिल जाअ ।
दुहिल दुधु कि बेण्टे समाअ[3] ॥
बलद विआएल गविआ बाँझे ।
पिटा दुहिअइ ए[4] तिना साँझे ॥
जो सो बुझी सोइ निबुधी ।
जो सो[5] चोर सोइ साधी ॥
जिते निते सिआला सिंह समर[6] जुझअ ।
देण्ढणपाअर गीत विरले[7] बुझअ ॥
× × ×

१. नगरीक, टालत्री, सेन—टाँबी २. नगरीको । टालत्री—वेङ्ग मंगार । सेन—वेङ्ग सांप ।
३. नगरीको । टालत्री—समाअ ४. नगरीको । टालत्री, सेन—दुहिए ए
५. नगरीको । टालत्री, सेन—ए ६. नगरीको । टालत्री, सेन—विआला ई ए
७. नगरीको । टालत्री—विचरिले

टालरे[4] मोर घर नाहि प्रतिवेशी ।
हाड़ीमे भात नाहि नित्ति आवेशी ॥
वङ्ग (वेङ्ग)सें साप बाहल जाए ।
दूरल दूध की (कलन) बूते समाए ॥
टाल बाँझ बिआएल गैआ बाँझे ।
पीटा दुहल जाए ए । तीन साँझे ॥
जे से बुद्धि सेहे (गुढ) निबुद्धि ।
जे न चोर सेहे साधु (धि) ॥
जित निते शृगाला सिंहे सम जुझए ।
देण्ढणपादक गीत विरले बुझए ॥

उक्त नगर महाकार-मेरुशिखर हमर निवासस्थान, जोहिक्रम अद्वैत परमार्थ-वस्तुमे हम एकसरे छी, कथा पड़ोसी नहि अछि । अहियामे भात नहि, अर्थात् अपन शरीरमे आत्मरूपे परिपक्व, प्रबुद्ध, चित्त नहि, चित्त चिन्तनादात्म्य प्राप्त नहि कए सकल, तें योगीन्द्रकें नित्य शून्यस्वरूपिणीक आसरा राखए पड़ैत छथि (अथवा चित्त नित्य विषयक आवेशमे दुर्बल रहैत अछि) । साप बेङ्गसें काटल जाइत अछि, अर्थात् चित्ते काय-वाक्सें खण्डित (नष्ट) कएल जाइत अछि (अथवा व्यक्त शून्यरूपे जेना कुचित-सर्पसें दष्ट हो, तहिना अद्भुत प्रतीत भए रहल अछि) । दूहल दूध पुनः स्तनामे कोना प्रवेश करए ? अर्थात् योगीन्द्रक चित्त वा आत्मा पुनः अपन उद्गम शून्यमयी महासुखमे प्रविष्ट भए रहल अछि, इ आश्चर्यक वस्तु । बलद प्रबुद्ध चित्त (बलद, बछड़ रहितहुं) ज्ञानरूप सन्तान प्रसूत कएलक आ गाय बन्ध्ये रहल अर्थात् शून्य नैरात्माक प्रसवक प्रश्ने नहि । अरे देखह तीन साँझ शरीरस्थ पीठक दोहन करैत छी, शक्तिकें आकर्षण कए आत्मसात करैत छी । यहि अवस्थामे पुनर्भव, नहि मुक्ति दुनु एके रङ्ग । विषयरूप परद्रव्यापहारी चित्त-चोर आ समाधिस्थ चित्त-साधु दुनु एके रङ्ग । आर इ साक्षात अनुभव होइत अछि जे नित्य प्रतिनित्य सिआर सिंहसँ लड़ैत अछि अर्थात् संसरणशील चित्त सबल भए, स्थिर भए, कदाचित, अद्वितीय परमशिवक प्रभुता, छिनए चाहैत अछि । देण्ढणपादक एहि गीतक आशय विरले बुझए ।

४. टाल—नगर [चा०], चक [टालत्री] शब्दः आलङ्कारिक ।

ताडकपाद

९ (५७)

अपणे नाहिँ सो[1] काहेरि शङ्का ।
ता महासुहेरी टुटि गेलि कङ्का ॥
अनुभव सहज मा भोल रे जोइ ।
सौकोटिविमुका नइलो तइसो होइ ॥
जइसने अछिलेसि[2] तइसन अच्छ ।
सहज पिअक जोइ भान्ति मा हो वाच ॥
वाक्पथातीत कान्हि वखाणी ।
वाक्प्यातीत काँहि वखाणी ॥
भणइ ताडक एथु[3] नाहिँ अवकाश ।
जो बुझइ ता गलेँ गलपास ॥

× × ×

अपने नाहि तँ करए शङ्का ।
से महामुद्रा, टुटि गेल कांखा ॥
अनुभव सहज न भूल रे योगि (नू) ।
सौकोटि-विमुक्ता नइसे सहजे होइ ॥
जइसने छलह तइसन छह ।
सहज-पृथक् योगि (नू) भ्रान्ति न हो वाह ।
वाक्पथातीत सन्तारे जानी ।
वाक्प्यातीत काहि वखानी ॥
भनइ ताडक एत नहि अवकाश ।
जे बुझइ तसु गले गलपाश ॥

अपन (शारीरक) अछन शङ्का (चित्तमे) नहि तँ आन करए चिन्ता ? जो महामुद्रा तेहन कथि जे हमर सभ कामना चल गेल, आन हन हुनकहिमे

१। वेन-सो २। वेन। शास्त्री—अछिले ३। पाठ०—इहिलेसि
१। पाठ०—एहु। वेन—एथु

लीन भए सन्तुष्ट छी। हे योगिन् ! सहज-सामरस्यक अनुभूतिकेँ विस्मरण नहि, जेना तेना चतुष्कल विषय-भण्डारसँ, संचित कर्मकोषसँ, मुक्त भेल जाइ। ई बुझह जे तोहर आत्मा निरय तत्त्व, सभ दिन एक रूप रहनेवाला, छइ। हे योगिन् एहि सहज कौलसाधनासँ भोगहुसँ फराक नहि होअह भवसागर पार करबाने अपन पाथेय (सत्यज्ञान) दिशि ध्यान राखह। अनेक कहिअह तोरा, अवाक् मनोगोचर करए बुझबोल लाग ! एहि साधनाक रहस्यमे पैसबाक अवकाश समक हेतु नहि, जे एकर मर्म बुझल तकरा गरे फाँस पड़ि जाइत, तकरा हेतु ई संसार फाँसी जकाँ बन्धन प्रतीत होइत—ई ताडक कहय छन्हि।

कङ्कणपाद

९ (५४)

सुने सुन मिलिआ तबेँ ।
सकल धाम उइआ तबेँ ॥
आअइँ चउखन (ण)[1] संबोही ।
माझ निरोहेँ अणुअर बोही ॥
बिन्दु णाद ण हिएँ पइठा ।
आण चाहन्ते आण विणठा ॥
जधा आइसेसि[2] तधा जान ।
मागे[3] थाकी सअल विहाण ॥
भणइ कङ्कण कलअल लाएँ ।
सर्व्व विचुरिल तअतानाएँ ॥

× × ×

सुने सून मिलित [ा] जबे ।
सकल धाम उदित [ा] तबे ॥

१। पाठ०, वेन। शास्त्री—आइँ चउ खण
२। पाठ०। शास्त्री, वेन—जधाँ आइसेँ सि
३। पाठ०। शास्त्री, वेन—मागे (ए)

छी [हम] चउसम संबोधी
माझ - निरोधें अनुत्तर बोधी ॥
बिन्दु नाद न हिये बहुता ।
जाम देखैते भान बिनष्टा ॥
सथा अणहु तथा काल [रमन] ।
माझे रहि सकल विहाम [विश्रोहि] ॥
[माझे बसइ सकल विहाम (प्रभात)] ॥
भनइ कण्हु कलकल - शब्दें ।
सब विचूरल कमला - नाथें ॥

शरीरस्थ सूक्ष्म उज्ज्वल ब्रह्माण्ड-सूर्यमे मिलित भए गेल, तखन सकल अनुत्तर भाव उदित भए गेल। हम सर्वदा संबोधमे, सुरीयमे लीन रहैत छी, मध्य-निरोधमें, मध्यविकास भेलापर, हम परम-शिवरूप बनि गेल छी। बिन्दु नाद हृदयङ्गम नहि, तें उगर्थ भ्रम पड़ैत अछि। एक दिशि ध्यान भेलासँ दोसर दिशि नष्ट भए जाइत अछि (नाद-बिन्दु दिशि भेलासँ समाधिए टूटि जाइत अछि)। जहिना अणहु (आत्मरूपमे) तहिना काल अर्थात् मध्यमे, शक्तिकेन्द्रमे चित्त रमला पर आर अन्य तत्त्वकें छोड़ह अथवा ई बुझह जे मध्यसमाधिमें अगाड़ी प्रभातकालीन प्रकाश प्रतीत होइत अछि। कहुपाद कहैत छथि—कलकलनादमें (शिवक 'तन'-उपलक्षणरूपें, विमर्श-शक्तिस्वभाव-नादमें) सभ विचूर्ण भए गेल, अविद्याक समस्त सृष्टि समाप्त भए गेल।

प्रबन्धपाद

१ (४९)

पेखु सुपणे अदसो जइसा ।
अन्तराले मोह तइसा ॥
मोहविमुक्का जइ मणा ।
तबें तुटइ भवणागमणा ॥

१ "... in the form of the 'thoughtless' timbrels of all creatures of as yet unconscious..." A. I. T. H.— P. 15
रंग-संग, 'मोह' नाद—विमर्शनाद अभिप्रेत (दक्षिण पाठों विमर्श-लक्षण)।

न च दाढ़इ न च तिमइ न च्छिज्जइ ।
पेख लोअ मोहे बलि बलि बाझइ ॥
छाआ माआ काअ समाणा ।
बेणि पासें बोइ विलाणा[1] ॥
चित्त तथतास्वभावे पोहइ ।
भणइ जअनन्दि फुडत्ण ण होइ ॥

× × ×

पेखु सपने अवरों जइसा ।
अन्तराले मोह तइसा ॥
मोहविमुक्का जदि मणा ।
तबे टुटइ भवागमणा ॥
ने ओ जरए ने ओ भीजए ने छेदल जाए ।
पेख लोक मोहें बलि बलि बाझए ॥
छाआ माआ काय समाना ।
दुइ पक्षे लोइ बिलाना ॥
[दुइ पक्षे सएल नाना[2]] ॥
चित्त तथतास्वभावे पोहइ ।
भनइ जअनन्दि स्फुरण न होइ ॥

पेखु, स्वप्न वा दर्पणमे जेना तहिना चित्तक अन्तरालमे भ्रमात्मक मोह, स्वप्नमे वा दर्पणमे यथार्थ-प्रतिबिम्बमात्र अयथार्थ आपातत: सत्य प्रतीत होइत अछि, तहिना प्रतीत विषयक मोह अछि। जँ मन मोह-मुक्त भए जएतह तँ जन्म-मृत्यु बन्धन टूटि जेतह। आत्मा शिवरूप अजर अछि, जलप्रवेशादीक्ष्य नहि अछि अछेद्य अछि, किन्तु लोक मोहमें ओकर स्वरूप नहि चिन्हैत अछि आ' विषयवासनाक मोहसँ अपनाकें नष्ट कए ओहिमे ओझराए जाइत अछि। छाया [शिवक प्रकाशक आभासमयी शक्ति], माया [बन्धनप्राप्त करए वाली] आ' काया तीनूमे वस्तुत: ताद्रूप्ये अछि, केवल आपातत: भिन्नता प्रतीत होइत

१। चमोरे—वि० छाया
२। द्रष्टव्य पूर्व पा० टि०

अछि। वाम-दक्षिण सुषुम्ना मार्ग परिणामसे एहो विज्ञानपर आइल अछि [अथवा दूरू मार्गक अनुसार तीनू एकहि परमशिवक नाना रूप अछि[२]]। जयमन्दीपाद कहैत छथि—हमर चित्त आब तत्त्वतत्त्वभावक सङ्ग, परम शिवतत्त्वात्मक अर्थात् विमर्शशक्तिक सङ्ग शोभित अछि, अहम्त्वक एहि स्थितिमे किछु कुरि नहि रहल अछि, 'नेति नेति'क मूकास्वाद होइत अछि।

तन्त्रीपाद

१ (२५)[१]

धर्मोदयः पादाधिष्ठानं वज्रपदं नादः ।
पञ्चक्रमं त्रयित्वा तन्त्रिकाः पटो विमलः ॥१॥
अहमेव तन्त्री स्वयमेव तानं ।
वितानं [च] स्वयमज्ञानलक्षणं ॥धु॰॥
सार्धत्रिहस्तं गृहे वेममुक्तं त्रिवृतं ।
गगनं पूर्णं च हि तन्त्रवयनं ॥२॥
अनाहतो वेमसरशब्दो हि गुरूपदेशेनाविरहितं ।
द्वे स्थिती छित्वा सूत्राणि व्याकृत्य इदं प्रसारितानि ॥३॥
अहि मतः शून्यतया लक्षणशून्यतासारं ।
वयन [जाल]रसतन्त्री मोहजालमुक्तः ॥४॥

× × ×

धर्मोदय पादाधिष्ठान, वज्रपद नाद ।
पञ्चक्रम तीनि तन्त्रीक पट विमल ॥
हमहि तन्त्री अपने तानी ।
बरनी स्वयं अज्ञानलक्षण ॥

१। ह्यपके कोशान्तर्गत पाठक अनुसार, ई॰ ओ॰ दृश्य।

२। विमर्शशक्तिके' त्रिधा प्रकाश के स्वभाव मानल जाइत अछि—'प्रकाशरूप विमर्शस्वभावः'—पराप्रवेशिका पृ० १

१। "The Caryā and the Sanskrit Commentary (save the last two verses) are lost which are put here in Sanskrit retranslation from Tib version appended at the end of this work."— चर्याकोश (इ॰ भे॰) पृ॰ हि॰

सढ़े तीनिहाथक, गृहमे परतानमुक्त त्रिवृत्त ।
गगन पूर्ण, ओएह पट तन्त्रवयन [बीनल] ॥
अनाहत परताल—परशब्द गुरुउपदेश सँ अविरहित ।
दुइ [दूनक] बान्हि काटि, सूत सभ इह पसारल ।
मथिये जाए शून्यता लक्ष लक्षण शून्यतासारमे ।
वयन [जाल] रस—तन्त्री मोहजालमुक्तता ॥

. धर्मोदय भेल अर्थात् विमर्शस्वभावक स्फूर्ति भेल। नादक अनुसंधान-रूप वज्रपदक अर्थात् शिवपदक प्राप्ति भेल। गुरुक पञ्चक्रमोपदेशरूप सूतकेँ थोनि, तन्त्रीक पट विमल भए गेल अर्थात् चित्तपट विशुद्ध भए गेल, विकल्पहीन भए गेल। हम स्वयं जोलहा छी, तानी सेहो हमहि छी अर्थात् हमर आत्मा अछि तानसमान मूलरूप। बरनी जे शक्ति तनिक लक्षण अज्ञान अछि। एहि प्रकारक घरमे ई साढ़े तीनि हाथक शरीर आब परतानसँ मुक्त अछि, एहिपर आब चित्तविशुद्धीकरणरूप विलक्षण प्रक्रियाक प्रयोजन नहि। आब ई शरीर अपन शरीरत्वके छोड़ि शून्यस्वरूप, पूर्णाहन्तास्वरूप, विमर्शस्वरूप पूर्णताकेँ प्राप्त भए गेल अछि। आब ओ चित्त जे एहि रूपकेँ प्राप्त कएने अछि सगरे सँ सिद्ध तन्त्रवयन अर्थात् सूतक यानि। हृदयस्थित अनाहतनादे सँ परताल [ताल]क शब्दविशेष थिक जे गुरूपदेशसँ कखनहुँ विरहित [कराक] नहि रहैत अछि। तात्पर्य आधार-भूत सूत्र जे सुषुम्नामे बान्हल रहैत अछि, तहिना जे एहि शरीरमे प्राण तथा अपानक तन्तु वा इडा-पिङ्गलाक तन्तु, तकरा हम एहि दृष्टिसँ काटल जे आग-दक्षिण श्वास-नाड़ीक तन्तुकेँ अवरुद्ध कए मध्यविकास कएल, सुषुम्नाक ब्रह्मनाड़ीक विकास भेल वा कुम्भक द्वारा वायु मध्यस्थितिमे चौंटकि गेल तन्त्रचान कुण्डलिनीरूपरूप सूतकेँ विकसित कएल महिषुरचक्रमे शून्यताशक्तिक प्रतिरूप कुण्डलिनीमे, तनिक लक्षण नहि अछि तात्त्विकतामे, मोहि [वयनजालकररसँ [विमर्शमय स्वभावक अन्तरङ्ग चित्तकेँ जनजाल जनित] सागरमय विमोर तन्त्री [जोलहा या तन्त्रीपाद] आब अन्य जालसँ, मोहजालसँ, विमुक्त भए गेल छथि।

शान्तिपाद

१ (१५)

सअसन्तेअहसरुअविआरेँ अलक्ख लक्खण ण जाइ।
जे जे कजुवाटे गेला जनाघाटा भइला सोइ॥

कुलें कुल मा होइ रे मूढा कजूयाट संसारा।
बाल तिल[1] एक बाहु मा भूलहु राजपथ[2] कनकारा॥
मायामोहसमुद्रा रे अन्त न बुझसि थाहा।
अरे नाथ न भेला दीसइ[3] भ्रान्ति न पुछसि नाहा॥
सुना पान्तर[4] कहु न दीसइ भ्रान्ति न वाससि जान्ते।
एत[5] अष्टमहासिद्धि सिसइ कजूयाट जाअन्ते॥
वाम दाहिण दोबाटा छाड़ी शान्ति बुलथेव संकेलिउ।
घाट न सुना खड़ तहि एहु होइ आखि बुजिअ बाट लाइअ॥

× × ×

स्वसंवेदनस्वरूपविचारें अरूपलक्षण न जाइ।
जे जे योगी चले नेला अनवाटा भेला लोइ॥
कुले कुले न होअइ रे मूढा! लोक बाट संसारा।
बाल! तिल एक बाहु न भूलहु राजपथ कनकधारा॥
माया-मोह-समुद्रा रे! अन्त न बूझसि थाहा।
अरे नाथ रे भेला देखिअ, भ्रान्ति न पुछसि नाथा॥
सुना प्रान्तर (पांतर) कहु न देखिअ, भ्रान्ति न वासइ जेते
एत अष्टमहासिद्धि सिसइ लोकबाट जेते॥
वाम दाहिन दो बाटा छाड़ि शान्ति बुलथि सकीअथि।
घाट न सुना खड़-तर न होइ, आखि बुजि बाट लाथि॥

स्वसंवेदन (आत्मबोध) (आत्म-प्रत्यभिज्ञा)क स्वरूप विचार कएलाक शान्तिपाद अलक्ष्यलक्षणयुक्त तत्त्व दिशि नहि जाइत छथि। जे जे योगी साधक एहि सरल मार्ग, कौलमार्गसँ गेल छथि से सभ बिनु घाटक, बाटसँ हुनल, भए गेलाह। एहि सम्प्रदायसँ ओहि सम्प्रदायमे, अपना चढ़ि चलसि नहि चलह, एक सम्प्रदाय कौल सम्प्रदायकें, लोक सम्प्रदायकें, एहि अन्तमे पकड़न रहह हे बालयोगिन तिलो भरि ई वाक्य नहि बिसरह जे ई पथ राजपथ, स्वर्णरेख-सदृश पथ थिक। मायामोहक समुद्रक अन्तमे कतहु थाह नहि भेटतह।

१। चलीको। शास्त्री—तिल। २। चलीको, लेन। शास्त्री—राजपथ
३। चलीको। शास्त्री, सन—दीसइ। ४। चलीको। शास्त्री, लेन—पंथ

एहि अगम्य समुद्रमे आगो नावो कर्णधारि नहि देखैत होएबक, तथापि तोँ भ्रान्त भए कोनहु गुरुबहुकें नहि पुछैत छहुन्ह। ओएह देखह, शून्य प्रान्तर (पाँतर) देखैत नहि छहक? आगो चलह, भ्रान्ति छोड़ह। कौल मार्गक, सरल पथक, अनुगामी भेने एहि संसारहिमे अष्टमहासिद्धिलाभ भए जैतह। वाम-दक्षिण, दुनू पथ, छोड़ि शान्ति विहार कए रहल छथि। एहि मार्गमे कतहु घाट, सुरम, खड़-तर आदि प्रतिबन्धक नहि (रोकनक हर नहि), आँखि मूनि शान्ति-पाद जाए रहल छथि।

२६[1]

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु।
आँसु धुणि धुणि निरवर सेसु॥
तह से हेरुअ[2] ए पाविअइ।
सान्ति भणइ किण्ण ए भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुणे अहारिउ।
पुण लइआ[3] अपणा पटारिउ॥
यहल बद[4] दुइ मार न दिण्णा।
सान्ति भणइ बालाग न पइसआ॥
कात न कारण न एहु जुगति।
सअसंवेअण बोलथि सान्ति॥

× × ×

तूर धुनि धुनि अंसु रे अंसु।
अंसु धुनि धुनि निरवर सेस॥
तीनो हेरुक न पाविअइ (भणइते)।
शान्ति भनइ की ओ भाविअइ (भाअइते)॥
तूर धुनि धुनि सुने आहारल।
पुनि लए अपना (कें) पाटल॥

१। चलीको। शास्त्री—अवधे हेरुक। सेन—तह पेहे दम
२। चलीको। शास्त्री—लइआँ। सेन—लइआँ
३। चलीको। शास्त्री—बद। सेन—बाट

बहुल बहल दुइ मार्ग न देखिअ।
शान्ति भनइ धोखाय [ो][४] न पइअए ॥
कारण न कारण जे एहु बुझति।
स्वसंवेदन ओइअ शान्ति ॥

नूर धूनि धूनि अंश अंश कएल गेल अर्थात् शरीर, वाक्, चित्तक साधना करैत करैत बिन्दुरूपमे ओहिसभक अनुभूति होअए लागल, पुनः ओहि अंश परमाणुपर मनकें वैसबेत वेलबैत ओ निराकारपर केन्द्रित भए गेल, अंश-परमाणु परिणाममे निराकारजकाँ परिणत भए गेल। तथापि, शान्ति कहैत छथि, परम शिव (हेरुक)क प्राप्ति नहि भए सकल, तेहुन मन बूझि पड़ैत अछि वस्तुतः हुनक स्वरूपक भावन होएबो कोना करए, ओ तँ भावित-भाव्य तत्त्वसँ अतीत छथि, शून्यरूपिणी प्रज्ञाशक्तिसँ संयुक्त तेसर मात्र छथि तँ परम शिवत्व प्राप्त करबाक हेतु हम शान्तिपाद ओहि शून्यमयी शक्तिकें आत्मसात् कए लेब, मनहु तँ भेल आत्ममे चिन्मयी शक्ति, अहन्ताज्ञान, जगाएत। मुदा परिणाममे हमरा इहो अहन्ता नहि रहल; हम, शान्तिपाद, मनकें कलमीन कए लेल, स्वाद लए चाटि लेल। वाम-दक्षिण मार्ग, पथ आ बहल-बहल मार्ग, हमरा नहि देखि पड़ैत अछि, कोनर अनुसरण केनिहारलमकें तँ उक्त रहस्य (क्षेत्र दर्शन) केशाओ भरि ने देखए। कार्य-कारण-सम्बन्धसँ विहीन जे ई युक्ति (वा योग) ने तर्कगम्य नहि, स्वसंवेदन(स्वानुभूति)मात्र गम्य थिक, शान्तिक मत मनहु छन्हि।

४। पूर्व इ० गीत क्र० ३

पारिभाषिकशब्दानुक्रमणिका

एहि अनुक्रमणिकामे चर्यागीतमे आएल पारिभाषिक शब्दसभकें प्रकरणमे देखाए, ताहिमे अक्षरानुक्रमेण राखि, शब्दक आगाँ कोष्ठमे ताहि गीतक संकेत देल गेल अछि जाहिसँ ओ शब्द आएल अछि। एक कोष्ठ अधिक नाम-संकेत अछि तथा १,२ आदि हुनक गीतक क्रमसंख्या अछि। यथा: सं०१क अर्थ भेल सरहपादक गीत संख्या १, एहि प्रकारें देखलासँ एहि पोथीमे गीत तथा ओ पारिभाषिक शब्द भेटि जाएत।

एकानता-चिह्नसँ पारिभाषिक शब्दक छायार्थ तथा पुनः ओकर पारिभाषिक अर्थ दए देल अछि। पारिभाषिक अर्थक आगाँमे ओहि अनुच्छेदक संख्या देल अछि, एहि पोथीक भूमिकाक ओहि अनुच्छेदसँ ओहि अर्थ, वस्तु वा तत्त्वक विचार भेटत। कतहु कतहु अर्थकें प्रामाणिक सूचित करबाक हेतु संस्कृतछायादिक निर्देश कएल गेल अछि। संकेतसभक प्रयोग कएल गेल अछि, जकर विवरण नीचा प्रस्तुत कएल जाइत अछि। संस्कृतछाया तथा टीकाक प्रसंग एक कथ्य ई जे केवल एकेटा छाया तथाटी का भेटैत अछि—डा० बागचीक संस्करणमे संस्कृत छाया तथा डा० बागची-म० म० शास्त्री पा सेनक संस्करणमे देल एक संस्कृत टीका। तँ जतए संस्कृत छाया वा टीकाक निर्देश अछि तत्र ई बुझबाक थिक जे शब्द एहि कोष्ठमे निर्दिष्ट गीतक संस्कृत छाया तथा टीका अभिप्रेत अछि तथा ओ छाया-टीका उक्त ग्रन्थमे ओहि निर्दिष्ट गीतक नीचामे भेटैत अछि। किन्तु, (एहि अनुक्रमणिकामे) पारिभाषिक शब्दक आगमे ओहि संस्करणसभक गीतसंख्या नहि अछि, एहि प्रस्तुत पुस्तकमे जे एम गीत संख्या देल अछि से संख्या अछि। तथापि उक्त दुनू संस्करणमे निर्दिष्ट गीत कोना

भेटत ? एहि समस्याक समाधान अनायास भए जाएत जखन एहि पोथीमे निर्दिष्ट गीतपर ध्यान जाएत। कारण, एहिमे हम प्रत्येक गीतक ऊपरमे कोष्ठमे, उक्त तीन संस्करणमे आएल ओहि गीतक संख्या सेहो देल अछि। जँ ओहि संस्करण-सभकें देखबाक कष्ट ई रहत जे पहिल एहि पोथीमे पारिभाषिक शब्द लग निर्दिष्ट संकेतक अनुसार गीत ताकि लेल जाए तखन, जँ तुलनाक प्रयोजन हो, आहि ऊपरमे कोष्ठमे देल संख्या उक्त संस्करणसभमे देखल जाए, अनायास ओ गीत भेटि जाएत।

एहि अनुक्रमणिकामे जे संकेतसभ प्रयुक्त भेल अछि तकर विवरण एहि प्रकारें बुझबाक थिक :—

१। कविक नाम-संकेत—नाम संकेतक विवरण स्वतन्त्रे भेटत एहि पोथीक समस्त संकेतक विवरणमे। कविक नाम संकेतक आगाँक संख्या एहि पोथीमे ओहि कविक ओहि गीतक क्रम संख्या थिक, जाहिसँ स०१ संकेतक अर्थ सरहपादक गीतक संख्या १ बुझबाक थिक, तात्पर्य ई जे ओ पारिभाषिक शब्द सरहपादक गीत स० १ मे भेटत, एवम्प्रकारें पारिभाषिक शब्दकें गीतमे लाबल जाए सकैत अछि

२। =चिह्नक अर्थ एतबे जे पूर्व आएल शब्दक छाया अर्थ आगाँ आएल शब्द भेल तथा पुनः तकर पारिभाषिक अर्थ तकर आगाँक शब्द भेल।

३। अर्थक आगाँ कोष्ठमे आएल संख्या—प्रस्तुत पोथीक भूमिकामे सम्पर्कित अनुच्छेदक संख्या।

४। दृ०—दृष्टव्य।

५। सं० टी०—संस्कृत-टीका—भाग ओहि गीत या गीतसभक।

६। सं० छा०—संस्कृतछाया [श्लोकमय] जे 'चर्यागीतिकोष'मे प्राप्य।

७। सं० टी०—म०म० शास्त्रीक संकलनक उत्तरभागमे धंतला टीका।

८। च० गी० को०—चर्यागीतिकोष

९। बा० बौ० सा० का०—बाङ्गिक बौद्ध साधना और साहित्य

१०। सं० शा० को०—संस्कृत-शब्दकोश [आप्टे महाशयक]

११। I. B. T.—The Indian Buddhist Iconography.

१२। गा० टि०—पादटिप्पणी

१३। सु०—सुलनीय

१४। गृ०—गृह्य

१५। देखन—ई सूचित करय जे जे ओहिसँ ठीक पहिने आएल अछि सएह।

१६। प्र०—प्रकाशः। सू०—सूत्र।

पोथीसभक विशद परिचय पुस्तकसूचीमे प्राप्य, ई केवल पारिभाषिक शब्दसूचीक संकेत विवरण भेल। पारिभाषिक शब्दसभकें यथासाध्य विषयक दृष्टिसँ वर्गसभमे बाँटि अर्थ प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

परमसत्य

अचिन्त [स० १]=अचिन्त्य=परमात्मा वा परमशिव [६३]।

अजरामर [स० १, वि० १]=मुक्त [११७,१२१-१२५]।

अणुत्तर [क० १]=अनुत्तर [६२]=जाहिसँ ऊपर कोनो सत्ता नहि।

अद्वय [मु० ८, चा० १]=अद्वय=परस्परभिन्न शिवशक्ति [८१]।

अनुत्तर [चा० १]——द्र० अणुत्तर।

अपा [स० ९, आ० १]=आत्मा [८४-८६]।

अमिअ [मु० २]=अमृत=सहस्रारस्थ मधु [१०६] या सामरस्यानन्द [११६]।

अमिआ [स० ४]=अमृता=अमृत [द्र० अमिअ]।

अलक्खलक्खण [दा० १, शा० १]=अलक्ष्यलक्षण [६३]।

आसव [का० २]=मद्य=अमृत। द्र० अमिअ।

एकाकारे [का० ४]=एकाकार भए=समरस भए [९३-९५]।

करुण शून्य [का० ६]=करुणा-शून्य=शिवशक्ति [८३]।

गअणे [दा० २]=गगन समान=शून्य समान [७५]।

गअन [मु० ७]=गगन=शून्यरूप शिवशक्ति [७४]।

जिणउरा [डो० १]=जिनपुरा=महासुखपुर [सं० टी०]=परलोक, सामरस्यक अवस्था [११५]।

जिनउर [का० १, का० ५]=जिनपुर। द्र० जिणउरा।

धाम [स० १, का० ८, क० १]=अनुत्तरधाम [६२]=परमपद।

परम निवाणे [दा० १]=परम निर्वाणमे=परम मोक्षमे [१३२]।

परम मोक्ष [का० ५] = परम मोक्ष = परमा मुक्ति [१३३]।

पूर्णचन्द्र [का० ६] = षोडशकलायुक्त बोधिचित्तचन्द्रमण्डल [सं० टी०]
= सहस्रारस्थ षोडशीक अन्तरङ्ग चित्त या प्राण [२७३,३२०]।

बोहि [स० २, चा० १] = बोधि = बोधिचित्त = परमशिव [८४]
= प्रकाश-विमर्श [६३]।

बोही [क० १] = बोधी = बोधिचित्त [द्र० बोहि]।

महासुख [कु० ३] = सामरस्यानन्द [११५]।

महासुह [लु० १, दा० १, भु० ४, का० ६, का० ७, कम्ब १] = महासुख =
सामरस्यानन्द [११५]।

महासुहे [शा० १, शा० २, भु० ५] = महासुखें[1] [द्र० महासुह]।

महासुहें [शा० २] = महासुखमें [द्र० महासुह]।

मुकल [स० २] = मुक्त [१३२]।

मुका [भु० ७] = मुक्त [द्र० मुकल]।

वाक्पथातीत [का० ११, ता० १] = वाक्पथसे अतीत परमतत्त्व [६३]।

वाहणी [वि० १] = मन = "वाहणीति सुरूपमोक्षस्वात्" [सं० टी०] से परम-
शिवमें लीन मेला पर सामरस्यानन्द या सहस्रारस्थ मधु [१०६]।

विरमानन्द [भु० ४] = विरमण चतुर्थानन्द [सं० टी०] = तुरीयानन्द [३१०]
= सामरस्य-समाधिक आनन्द [३१०]।

विहाण [भु० ३] = विहान = ज्ञान [-सूर्य]का उदय [१७८]।

शून [भा० १] = शून्य [७५]।

शून्यनारात्मो [कु० ३] = महासुख [द्र० गीतक ओड्डी पद्धतिमें 'महासुखनामा']
= सामरस्यानन्द [१२५]।

सकलानुत्तर भाणी [शा० १] = सकलानुत्तर भानि = समस्त विश्वके
अनुत्तर परमतत्त्व (का प्रतिबिम्ब) मानि [द्र० अनुत्तर]।

१। चर्यागीतिमें ऐं तथा ए का प्रयोग यथेच्छ किया है किन्तु शेखर रत्न मेला अधिक। तृतीयामें ए तथा चतुर्थीमें ऐं का प्रयोग मेरेव अधिक [द्र० विद्याधरकृत दोहाकोश—भूमिका पृ० ५१-५३]। किन्तु हमारा कतिपय कथनु उक्त कथनके अतिरिक्त ऐं का प्रयोग तृतीयामें तथा ए का प्रयोग चतुर्थी विभक्तिमें सेहो मेरेव, प्रस्तुत अनुक्रमणिकामें सर्वत्र कं० छाया तथा कं० टीकाकी ई वारणा शुद्ध मेल अधिक। कतिपय एक अर्थमें ए लगल सेहो भेरेव।

सअसंवेअण [शा० २] = स्वसंवेदन = अ [illegible] १०६।

सअसंवेअण [शा० १] = स्वसंवेदन = [द्र० सअसंवेअण]।

समरस [बी० १] = समस्त अनेकतामें एकताक अनुभूति [६६]
= सामरस्यमय [३५५-३५६]।

समरसे [भु० ७] = समरसाधिनिमें [६६]।

सहज [का० ११] = सहजें [स्वभावतः, सदा] प्राप्त सामरस्यक आनन्द [१२२]।

सहज निद्राए [का० १०] = सहजनिद्रासे = सामरस्यसमाधि (तुरीय)मे
डुबल [१४१]।

सहजमहातरु [भु० ७] सामरस्यमय शिवशक्ति (= परमशिव) रूप
महान् वृक्ष [१४१]।

सहज सहआ [भु० ५] = सहज स्वरूपा = सामरस्यमय शिव-शक्तिक
स्वरूप [१४१]।

सहजानन्द [भु० ४] = सामरस्यानन्द [१४१]।

सहजे [स० ३, का० १२, वि १] = सहजें = सहजक संग = शिवशक्तिक संग,
सामरस्यें [१४१]।

सुण विआर [का० १] = शून्य-विचार = शून्यक विचार = परमतत्त्वक
विचार [७४]।

सुन करुण [डा० १] = शून्य-करुणा = शक्ति-शिव [८३]।

सुने सुन [क० १] = शून्ये शून्य = ब्रह्माण्डशून्यमें पिण्डशून्य या परमशिवमें
शून्यताशक्ति [७४-८३]।

सुहे [का० १०] = सुखें = सामरस्यक महासुखें [११६]।

सूना पान्तर [शा० १] = शून्य प्रान्तर या शून्य पौनर = परमतत्त्वक
साम्राज्य [७४]।

सोण रूअ [भु० ८] = सोन-रूप या शून्यरूप (आकार) [७४]।

शक्ति

अठकुमारी [डा० ६] = अष्टकुमारी = अष्टप्रकृति [डं० टी०] [६८] अथवा अष्टशक्ति [कुमारी = शक्ति, द्र० शिवसूत्र प्र० १ सू० १३] ।

उदकचान्द [लु० २] = जलचन्द्र = जलमध्य चन्द्र-प्रतिबिम्ब । द्र० प्रतिबिम्बवाद [२२१] ।

कमलिनि [भु० ४] = कमलिनी = कुण्डलिनी [३४४, रूपी पद्मिनी महापद्मवन दिशि आइल ।

खसम सभावे [भु० ७] = गगनसमान स्वभावें = शून्यस्वभावें = विमर्शस्वभावें [७३] ।

गअण [डो० १, का० १३, कम्ब० १] = गगन = शून्यशक्ति = विमर्शशक्ति [७७] ।

गअणा [स० ४] = गगना = शून्यस्वरूपिणी [गगनहृदया] [८०] ।

गअणे [स० ३] = गगने = शून्यतास्वभावमें = महतोविमर्शशक्तिस्वभावमें [७३],

गगन [त० १]—द्र० गअण ।

छाआ [ल० १] = छाया । द्र० प्रतिबिम्बवाद [२२१] ।

जलबिम्बाकारे [स० ४] = जलमध्य प्रतिबिम्बक आकारें । द्र० छाआ ।

जोइणि [का० ८] = योगिनि = योगिनी = महामुद्रा [२१७] ।

जोइणी [भु० ४] = योगिनी । द्र० जोइणि ।

जोइनि [शु० १] = योगिनि । द्र० जोइणि ।

जोम्बि [का० ३, का० ७] = डोम्बिनि = डोम्बिनि वा महाशक्ति [३३९] ।

डोम्बी [डो० १, का० ८, धा० १] = डोम्बिनि । द्र० डोम्बि ।

तअता [का० ५, का० १०, कम्ब० १, ल० १] = तथारूपता = विमर्शस्वभाव [३०३] ।

दाअण पतिबिम्बु [भु० ६] = दर्पण-प्रतिबिम्ब । द्र० छाआ ।

नैरामणि [स० २, धा० १] = गृहिणी रूपमें भाविता नैरात्मा [ला० बो० सा० सा० पृ० ३२७] = गृहिणीरूपमें भाविता शून्यस्वरूपिणी, निराकारशक्ति [२०८, २६४] तथा [७६] ।

पारिम कुलें [दा० १] = परम कुलें = परमा शक्तिमें [१४३] ।

पोइआ [डो० १] = नीच जातिस्थ कन्या (ए० गी० को० पृ० ४०), निम्नश्रेणिका स्त्री । = डोम्बिनि तथा निम्नसमवकन्या कुण्डलिनीशक्ति [३३४] ।

बहुरी [कु० १] = बधूटी = नवयौवना (सं० श० को०) = युवती शक्ति [मुद्रा] [८५] अथवा कामोन्मत्ता कुण्डलिनीशक्ति [३३६] ।

बिआली [कु० १] = बिआइल = जगत्प्रसूती महामुद्रा [१६६] ।

महासुदेरी [ला० १] = महामुद्रा [२०८] ।

मातङ्गी [डो० १] = मातङ्गी महाविद्या वा चाण्डालिनी (सं० श० को०) = कुण्डलिनी शक्ति वा चण्डाली = कुण्डलिनीशक्ति [३४२] ।

मात्राहरिणी [भु० ३] = महामातृस्वरूपिणी हरिणी = अन्तःशक्ति [३३१]-रूपिणी हरिणी ।

रुइडिमि [वि० १] = रौण्ड्री वा रौण्डिनी [मद्यमत्ता वा कलवारनी—द्र० सं० श० को०] = रतिप्रिया शक्ति [२२४] अथवा रतिप्रिया कुण्डलिनीशक्ति [३३१] ।

शून संपुआ [का० ३२] = शून्य-सम्पुटा = शून्यस्वरूपिणी विमर्शमें, अहन्तपरामर्शमें सम्पूर्ण [७७] ।

सुइआ [स० ४] = शून्य = शून्यस्वरूपिणी [८०] ।

सुण तरुवर [का० १३] = शून्य-तरुवर = मायारूपमें शून्यवृक्ष [७४ ख] ।

सुण्णमहला [रा० २] = शून्य-महिला (सं० श० को०) = स्त्रीरूपमें भाविता शून्याकारा शक्ति वा महामुद्रा [८०, १०८] ।

सुण विआर [का० १] = शून्य-विचार = शून्यशक्तिक [८०] विचरण ।

सुणे अहारिअ [शा० २] = शून्ये (शून्यकें) आहारल = शून्यकें आहृत कपल = शून्यशक्तिकें आत्मसात् कपल, अन्य साधना द्वारा आत्मलीन कपल [३३६] ।

सुन नैरामणि [रा० १] = शून्यनैरात्मा । द्र० नैरामणि ।

सुनुपाख [लु० १] = शून्य-पक्ष = शून्य-शक्तिक [८०] पक्ष ।

सोंने [कम्ब० १] = स्वर्णें वा शून्यें = स्वर्णें वा [तत्समान चकचक करैत] शून्यता (विमर्श) शक्तिकें [८०] ।

हुँ भअ इ गअणा [स० ४] = हुँ-भअ इ गगना = हुँकारखीजोद्भवा गगनहृदया महाविद्या (तारा), महती शक्ति [१५३] ।

शिव

करुणाडमरुलि [आ० १] = करुणा-डमरू = करुणामय शिव [८३] का डमरू।

करुणा नावी [कन्ह० १] = करुणा-नाव = करुणामय या शिवमय चित्त-नौका [८३, ८६, ८९, १६६]।

करुणानेह [भु० ५] = करुणा-नेह = शिवका करुणामय स्वरूप [८३]-मेघ।

खमण भतारे [कु० २] = ख-मन भतारे = गगन-मन स्वामी = शून्य-चित्त-स्वामी = चित्‌रूपमें चित्त-स्वामी (चित्‌शक्तिक) [८९]।

हेरुक [वी० १, शा० ५] = हेरुक = महाक स्वामी [I. 8. 1 --P. 157] = शक्तिक स्वामी [८१] = शिव [८१]।

साधना-मार्ग

सामान्य प्रमाण

अष्टमहासिद्धि [शा० १] = अष्टमहासिद्धि [१५७]

इड़ामाला [का० ११] = इड़क माला [१५७]।

उजुबाट [स० २] = सोझ बाट [१४८, १५७]।

एवंकार [का० २] = एवं मन्त्र [१५४, १५७]।

कपाली [का० ३, का० ४] = कापालिक [१४६, १५७, १५८]।

कवाली [का० ४] = कपाली। द्र० कपाली।

कपालि [का० ३] = कापालिक। द्र० कपाली।

कुल लइ [स० ३] = कुलाश्रित भए = शाक्तिक आश्रित भए या कौल मार्गमें [१५७]।

कुलें कूल [डो० १] = इलसलत लटपर [च०गी०को० पृ० ४६ पा० टि० कुल मानि] अथवा एक देहसँ दोसर देहमे [प्रभुत गीतक मैथिली टीका द्रष्टव्य]।

कुलें कुल [शा० १] = एहि कुलसँ ओहि कुलमे = कौलक एक आम्नायसँ दोसरमे। कौलक हेतु द्रष्टव्य [१५७]।

कथ्थी [कु० १] = आधार [६]।

जोइ [का०२, का० १२] = योगी [१५८]।

जोइआ [गु० ६] = योगिआ। द्र० जोइ।

दाहिण वाम [वा० १] = दक्षिण वाम मार्ग [१४८]।

वामाअ [वा० १] = वर्ग-अर्ध पुरुषार्थ मध्य [३४६]।

वाम-दाहिण [अ० ३, डो० १, कन्ह० १, शा० १] = वाम-दक्षिण। द्र० दाहिण-वाम।

वीरा [गु० १, कु० २] = वीरभावाश्रित [१५७]।

हाकेर माली [का० ३] = हाकक माला = अस्थिमाला [१५३, १५७]।

हूँ [अ० ४] = हूँ-बीज (कूर्च-बीज) [१५७, ३७१]।

काय-वाक्-चित्त [त्रिधातु]

काअ वाक् चित्त [का० ११] = काय-वाक्-चित्त [१६६]।

काअवाकचित्त [दा० १] = कायवाक्चित्ते। द्र० काअवाक्चित्त।

तिअ धाउ [शा० १] = त्रिधातु = कायवाक्चित्त [सं० टी०] [१६६]।

तिअ धाए [कु० २] = त्रिधातुए = त्रिधातुमे [सं० छा०] = कायवाक्चित्तमे [१६६]।

तिनिएँ पाटें [म०१] = तीनि पाटमे = तीनि पीठमे [व० टी०] = कायवाक्चित्त-पीठमे [सं० टी०] [१६६]।

त्रिधातुए [का० ६] = तीनि धातुमे = कायवाक्चित्तमे। द्र० तिअ धाए।

मैथुन [महामुद्रा-साधन]

कमल कुलिश [गु० १, भा० १] = पद्म-वज्र = भगलिङ्ग [३४, १८५, २२६]।

कुन्दुरे [गु० ६] = इन्द्रिय संयोगमे [२२७] = मैथुनमे [५२७]।

कुलिशकमल [कु० ३] = वज्र-पद्म = लिङ्ग-भग। द्र० कमलकुलिश।

खिणाली [का० ७] = खिनारी = खिनारि = सबक आत्मा (-रूप शिव)क संग रमण केनिहारि [२२३]।

जाणजौवण [कु० २] = ज्ञान-यौवन = ज्ञान यौवन या तरुणयौवन [च० गी० को० पृ० ६६ पा० टि०] [१८५]।

सिंघड़ा [मु० १] = सिंघड़ा = नाड़ीव्रण [१४६]क अथवा अथवा योन्यम [२२३]।

दसनि दुआरत [वि० १] = दशन दुआरिसं = पैरोचन-द्वारसों वा दशम इन्द्रिय अपस्थसों [२६७]।

देंवमा लाजें [मु० ८] = पद्मना-लाजें = पद्मा-लाजनिमे [तु० दालनं-मो० शा० कों०] = पद्मनारमें = भगवारमें [३४]
= प्रशामे [१८५]
= शक्तिमे [१८६]।

धिमाण [मु० २] = धिमाम = जगतकें प्रभुत्व करत। द्र० धिमासी (शक्ति)।

धजधारी [शा० १] = पुँ चिह्नधारी [४६४] = उपाय [१८५] = शिव [१८६]।

धजपद [स० १] = लिङ्गपद [३४] = उपायपद [१८५] = शिवपद [१८६]।

धाजनाथ [मु० ८] = धजनाथ = लिङ्ग-नाथ [३४] = उपायनाथ [१८५]
= शिवनाथ [१८६]।

चित्त

करहा [बी० १] = करभा = युपक हाथी [सं० शा० कों०]
= चित्तगज [८७, १६५, १६६]।

करिणा [का० २] = करिणु (अनाहरमें) = गज = चित्तगज। द्र० करहा।

कालमुसा [मु० २] = कालमूसा = दुष्ट चञ्चल चित्त-मूस [१६६]।

गजवर [बी० १] = गजवर = चित्तगजवर। द्र० करहा।

गजवरें [का० ५] = गजवरें। द्र० गजवर।

चित्त [मु० ८] = चित्त [८७, १६६]।

चित्तकपटहार [का० ६] = चित्त-कपटहार [१६६]।

चित्तराम [स० २, भा० १] = चित्तराम [१६६]।

चित्त विकरणे [आ० १] = चित्त विकरणे = चित्त विकारे = विकल्पजाल [१६६]।

चित्त विहूनें [भा० १] = चित्तविहीने = चित्तविहीन भेलासें [१६६]।

चित्त [द्वा० १]——द्र० चित्त।

चित्तराज [का० ६]——द्र० चित्तराम।

चीत्तगलन्दा [स० १] = चित्त-गलेन्द्र। द्र० गजवर।

चीत्त थिर करि [स० ३] = चित्त स्थिर कए [१६६]।

चञ्चल चीत [तु० १] = चञ्चल चित्तो [१६६]।

चञ्चल मुसा [मु० २] = चञ्चल चित्त-मूस [१६६]।

छिअ मन [शा० १] = निज मन = निज चित्त [१६६]।

छिअ मन [मु० ४] = निज मन [द्र० छिअ मन]।

पलन्दें [स० ४] = पलदें वा पड़दें = इन्द्रियकें बल देनिहार बड़द समान विकल्प-दुक्त चित्तमूढ़ चित्तें [१६६]।

मण [आ० १, का० १३] = मन = विकल्पयुक्त चित्त [१६६]।

मणुरअणा [मु० ७] = मनरत्ना = मनोरत्ना = मनोरान = विकलित चित्त [१६६]

मुसअ [मु० २] = मूषक = मूस = चञ्चल चित्त-मूस [१६५]।

हरिणा [मु० १] = चित्त-हरिण [१६६]।

विकल्प

अवणागमण [का० १०] = आवागमन = जन्ममरण [१७०,१७१]।

अवणागमणा [अ० १] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमण।

अवणागवणा [मु० २] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमणा।

अवरना [का० ६] = आवरणा = मायाक आवरण [१६६]।

अविहार [स० ४] = अविचार = अविद्याक [१७४]।

अविद्या [का० २] = अविद्या [१०६]।

आलाजाला [का० ११] = इन्द्रजाल [प० गी० को० पृ० १३१ पा० टि०]
= इन्द्रजाल नकाँ मिथ्या मायाजाल [१७५]।।

इन्द्रिअ [आ० ६] = इन्द्रिय [१७२]।

इन्द्रिजाल [मु० ५] = इन्द्रिय-जाल [१७२] वा इन्द्रजाल [१७०]।

इन्द्रिविसिआ [मु० ८] = इन्द्रियविषया = इन्द्रिय-विषय [१७२]।

इन्द्री [द्वा० १] = इन्द्रिय [१७२]।

करण कपटेर [मु० १] = इन्द्रियकपटक [१७२]।

करिणिरें [का० २] = हथिनीकें = इन्द्रियरूप हथिनीकें [१७२]।

गोहाली [स० ४]=गो-हाली=इन्द्रियशाला (शरीर) [१७२]।

चांनेरा [का० ३]=चकेरा=मायाक आवरण-प्रपञ्चजाल (अपन हाथसँ बीनल) [१६६]।

जाममरण [भु० ७]=जन्ममरण [१७०, १७१]।

नणन्द [का० ४]=ननन्द=ननदि [ननान्दरं—सं० छा०] वा पञ्चेन्द्रियादि (सं० टी०)=ननदि वा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय [१७२]।

पञ्चजणा [भु०३]=पञ्चजना=पञ्चविषय (सं०टी०)=इन्द्रिय-विषय [१७२]।

पञ्चपाशण [भु० ८]=पञ्चपत्तन=(रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञान) पञ्चस्कन्धपर आश्रित अहङ्कारममकारादि (सं० टी०) [१७३]।

पञ्च विसञ [म० १]=पाँच विषय=पञ्च ज्ञानेन्द्रियक विषय [१७२]।

बाम्पण [का० २]=बन्धन [१७३]।

भय घिण [आ० १]=भय-घृण=भय-घृणा=अष्टपाशमे भय-घृणापाश [१७४]।

भव [का० १२]=जगत् [१६२]।

भवनिर्वाण [स० १]=भव-बन्धन-मोक्ष [१७३]।

भवनिर्वाणे [का० ८]——द्र० भवनिर्वाण।

भवमोह [स० ४]=भव-मोह=संसारक मोह [१७२, १७३]।

भावाभाव [लु० २, भु० ५, भु० ७, का० २]=भाव-अभाव विकल्प [१६६]।

भांतिएँ [भु० ६]=भ्रान्तिएँ [१६१]।

माया [ज० १]=माया [१७२]।

माआजाल [का० ६]=मायाजाल [१७२]।

माआ मोहा [शा० २]=मायामोहा=माया-मोह [१७२-१७३]।

मायामोह [शा० १]—द्र० माआ मोहा।

मोह [भु० ३, का० १०, चा० १, ज० १]=मोह [१७३]।

मोहँ [भा० १]=मोहसँ। द्र० मोह।

रस रसानेरे [स० १]=रस-रसायनक [१७४]।

राग द्वेष [का० ४]=राग-द्वेष [१७२]।

राजसाप [भु० ९]=रज्जु-सर्प=रज्जुमे सर्पक भ्रान्ति [१६१]।

वाणल [भु० ७]=वाणलः=जालसँ (सं० श० को०)=मायाजालसँ [१७२]।

वासना [भु० ६]=वासना [१७८]।

विषयेन्द्रिय [का० ६]=विषयग्राहक इन्द्रिय [१७२]।

विसअमण्डल [म० १]=विषयमण्डल [१७०, १७८]।

सुख दुखेँ [लु० १]=सुख-दुःखसँ [१७२]।

सुभासुभ [का० १३]=शुभाशुभ [१७२]।

हरि हर बाला भट्टा [चा० १]=हरिहरब्रह्मा भट्ट [१७२, १७३]।

योगसाधन [अन्तःशक्तिसाधन]

अणहकसङ्ग [म० १]=अनहत-कर्षण=अनाहत-कर्षण=अनाहत-घन-गर्जन [३०४, ३०६]।

अणहा [बो० १]=अनहा=अनहद=अनाहत नाद [३०६]।

अधराति [भु० ४]=अर्धरात्रि=सहस्रारसँ हृत्पद्म मध्य थरिक प्राणक स्थिति [२६४]।

अनहा डमरु [का० ४]=अनाहत-डमरु। द्र० अणहकसङ्ग।

अन्तराले [ज० १]=अन्तरालमे=मध्यमे [३५०, ३५१, ३५४]।

अनाहत [स० १]——द्र० अणहा।

अमिअ पाण [भु० २]=अमृत पान=सामरस्ययोगामृत [३३६]।

अवधूइ [भु० ४], अवधूती [बो० १]=अवधूती नाड़ी [२४६]=सुषुम्ना नाड़ी [२५०]।

आलि कालि [का० १, का० ४, बो० १]=इड़ा-पिङ्गला नाड़ी [२५०]।

ओड्डियाणे [गु० २]=उड्डीयाने=उड्डीयाण पीठमे [३५६]।

कमल [भु० ४]=शिरःस्थ सहस्रदलपद्म (चक्र) [२७२]=शिरःस्थ सहस्रार-पद्म [२८६]।

कमलरस [गु० १]=सहस्रारक अमृत [३३६]।

कायनायडि [स० ३]=कायनायक=शिराधुमे काय-नायक [१६६]।

काआ तरुवर [लु० १]=काया तरुवर=काय-वृक्ष श्रेष्ठ [१६६]।

कुम्भीरे [कु० १]=कुम्भके=कुम्भकप्राणायामे [३५६]।

गअणटाकलि [म० १]=गगन-टाकलि (शब्द या ध्वनिविशेष—द्र० प० गी० को० पृ० ५६ पा० टि०)=आकाशक अनाहत नाद (द्र० ऐजन) =शून्यता-शब्द (सं० टी०)।

गअणे उठि [भु० २]=गगने उठि=महासुखकमलवन (चक्र)से आए (सं०टी०) =सहस्रार-कमलवन नाद [२८६]।

गअणत [शा० १]=गगनमे=सहस्रारस्थ शून्यसे (द्र० गअणे उठि, गअण टाकलि)।

गिरिवरसिहर [शा० १]=गिरिवरशिखर=मेरुशिखर=मेरुदण्ड-रूप मेरुवर्तक शिखर [२५१,२५२,२५४]

गुली [शा० १]=गुहामे लीन=मेरुदण्ड-कन्दरामे लीन [२५४]।

गङ्गा जमुना [डो० १]=गङ्गा-यमुना=इडा-पिङ्गला [२५०]।

घडली [वि० १]=घटी (सं० टी०)=संवृति-परमार्थ सत्यद्वयके घटित केनिहारि अवधूतिका नाड़ी (सं० टी०)=सुषुम्ना नाड़ी [२५२]।

चउकोडि [भु० ८]=चतुष्कोटि [२७८]।

चउसठि [वि० १]=चौंसठि (निर्माणचक्र या आधारचक्रके बौद्धकथित-दल-संख्या) [२६४, ३४१]।

चण्डाली [भु० ८, का० ७, चा० १]=चण्डा-आली=कुण्डलिनी [३२७-३४२]।

चन्द सूज [डो० १]=चन्द्रसूर्य=ललना-रसना=इडा-पिङ्गला [२५०,२५२]।

चान्दसुज [गु० १]——द्र० चन्द सूज।

चौषट्ठि [का० ४]——द्र० चउसठि।

तथतानादें [क० १]=तथता-नादें=तथाकथता-नादें [३०३]।

तूर्ये [कु० ३]=तुरीय [३१०]।

दाहिण वाम [चा० १]=रसना-ललना=पिङ्गला-इडा [२५०]।

दुलि [कु० १]=द्वयाकार जलद लीन होयि, ताहि महासुखकमलकें (सं० टी०) =सहस्रारक अद्वयकें [३३६]।

देहनगरी विहरइ [का० ४]=देहनगरी विहरैत छथि=कण्डमय निज पिण्ड-पीठमे [२३२] या देह-देवालयमे [२४०] विहरैत छथि।

धमण धमण [गु० १]=इडा-पिङ्गला [२५०]।

न रवि शशि [स० २]=ने पिङ्गला, ने इडा [२५०]।

नलिनीवन [भु० ३]=नलिनीवन=महापद्मवन=सहस्रार-पद्मवन [३४३]।

नाड़ि [कु० २]=नाड़ी [२४५-२४३]।

नाड़िशक्ति [का० ४]=नाड़ी-शक्ति=ब्रह्मनाड़ीक अन्तःस्थिता शक्ति =कुण्डलिनी शक्ति या प्राणशक्ति [२८६]।

नाद [कु० ३, त० १]=नाद [३०१]।

नाद न बिन्दु न [स० २]=नाद-बिन्दु किछु नहि [३०२]।

पद्मवण [भु० ३]=पद्मवन=महापद्मवन=सहस्रारपद्मवन [२४३]।

पिटा [कु० १, डे० १]=पीठा=पीठ [३५०-३५६]।

बतिस नाडिवनि [गो० १]=बत्तीस नाड़ी [२४८] रूप तन्त्रोक्त ध्वनि।

बतिस नोडणी [भु० ४]=बत्तीस नाड़ी [२४८]।

बाम दाहिण [स० २, डो० १, कम्ब० १, शा० १]=ललना-रसना =इडा-पिङ्गला [२५०]।

ब्रह्मनाड़िका [का० ३]=ब्रह्मनाड़िका=ब्रह्मनाड़ी [२४३]।

बिन्दुनाद [क० १]=बिन्दु-नाद [३००]।

मज्झ [का० ६]=मध्य [३५१]।

मणपवण [का० ८]=मन-पवन=मन-प्राण [३२३]।

मणि [त० २]=मणिपूर [३४६]।

मणिकुले [गु० १]=मणिकुलें=मणिमूलें [सं० टी०]=मणिपूरकें [३१६]।

माझ [क० १]=मध्य [३५०, ३५१, ३५४]।

माझें [चा० १]=मध्यमे। द० मान।

मुसा पवणा [गु० ४]=मूस-पवना=प्राण [२६१] रूपी मूस [लययोगकें पूर्व]।

मेरुशिखर [गा० १]=मेरुशिखर। द्र० गिरिवरसिहर।

रवि शशी [का० ४]=रवि-शशि=पिङ्गला-इडा [२५०-२५२]।

वण [श० १, भु० २]=वन=कायपर्वतवन [सं० टी०]=महापद्मवन। द्र० पद्मवन।

विरमानन्द [भु० ४]=विलक्षण शुद्ध आनन्द [द्र० ओपद गीत] [२७५]।

शासु [का० ४]=श्वास [३४१]।

सिखरे [कु० ३]——द० गिरिवर सिहर।

ससहर [सु० ४, का० ७, धा० १]=शशधर=बोधिचित्त-चन्द्र [तीनू गीतक सं० टी०] अथवा चन्द्रमण्डल=चित्तचन्द्र [३२३], प्रज्ञाचन्द्र [३२४] या इड़ा [चन्द्र] नाड़ीमण्डल [३५०]

सन्धि [डो० १, वी० १]=सन्धि=वाम-दक्षिण नाड़ीक सन्धि या मध्य [३५०, ३५४]।

सासु [गु० १]=श्वास [३४६]।

सुखपुर [कु० ३]=महासुखचक्र [सं० टी०]=सहस्रारचक्र [२८३]।

सूज, ससि [वी० १]=सूर्य-चन्द्र=पिङ्गला-इड़ा नाड़ी [२५०]।

सुसुरा [कु० १]=श्वास [३४६]।

—:०:—

द्वितीय खण्ड